

धन्यवाद

यह पुस्तक स्व० ल० हरदयाल शाह जी माहुर की
पुण्य स्मृति में ल० बूरी शाह पन्ना छात्र जी
जैन में निज ध्येय से प्रकाशित कराई ।

इस क्षिप में आप को सहर्ष धन्यवाद
देता हूँ और शुभ भावना करता हूँ कि
आप की सम्पत्ति दिन दुगुनी
घोर रात बीगनी ।
वृद्धिगत हो ।

निवेदक :-

विशौरी काठ जैन हिन्दी प्रभाकर ।

विषय अनुक्रमणिका

१	मूर्तिपूजा निराकरण के विषय में प्रश्नोत्तर	१०
२	पुजेरे दण्डियों द्वारा माना हुआ जड़मूर्ति पूजा में अनन्त व्रत रूप तप फल	५८
३	पुजेरे दण्डियों का दातादि खाने वाला और सर्व जाति का अनिष्ट मृत पीने वाला चौविहार व्रत	६८
४	शुद्ध स्थानकवासी जैन हो प्राचीन जैन हैं	७९
५	हाँ मुखपत्ति मुख पर बाँधनी ही जैन शास्त्रोक्त है ।	१०२
६	मुख पर मुखपत्ति बाँधने के विषय में दण्डी वल्लभ विजय जी की हस्त लिखित चिट्ठी ।	१११
७	क्या पुजेरे लोग गंगा यमुनादि के स्नान से पाप रूप दोष निवृत्ति मानते हैं ?	११८
८	पुजेरे और सनातन धर्म की मूर्ति मान्यता में विशेषान्तर	१२३

। सत्पासत्य निर्घोष

९. वण्डी आत्मा राम जी के सेखों द्वारा
 शिवजी बैरपागामी और कमा पावैती)
 बैरपा और भी समातन घमं के मार्ग
 हुए देवों की निम्हा १२८
१०. वण्डी आत्मा राम जी मन्त्रवादी १३७



शुद्धि-पत्र

पुस्तक छपते समय इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया था कि पुस्तक में किसी तरह की अशुद्धि न रहने पावे किन्तु फिर भी प्रेस की असावधानता के कारण कुछ अशुद्धियाँ रह ही गई हैं। उन में से मुख्य २ अशुद्धियों का शुद्धि-पत्र नीचे दिया जाता है। आशा है कि प्रिय पाठक-गण अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ने का कष्ट करेंगे।

विशेष नोट :- पुस्तक के सब स्थानों पर सन्मूल, मुकट, मिथ्यात, व्यवस्था शब्दों के स्थान पर क्रम से समूल, मुकुट, मिथ्यात्व, और अवस्था शब्द पढ़ने की कृपा करें।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२	२	कुच्छ	कुछ
२	८	का	को
२	११	आव	आप
२	१३	जेह्वा	जिह्वा

सत्यासत्य निश्चय

पृष्ठ	पङ्क्ति	अष्टादश रूप	शुद्ध रूप
३	६	कौटुलीकर	काटुलीकर
३	१०	की	को
४	११	कुत्रिमता	कुत्रिमता
५	१२	बाहिय	बाह्य
७	८	धर्मोपदेश	धर्मोपदेश
८	१०	प्रास्त	परास्त
८	१४	रहपात	रहिपात
११	३	ज्ञान	अज्ञान
११	१३	गर्तधारण	गर्तधारण
११	१८	इत	इत
२२	११	नकला	नकली
२३	४	आपमम	आक्रमम
२४	१	पथी	पथी
२४	६	हाने	हाने
२४	१३	कुष्ठ	कुष्ठ
२५	१	बन्धी	बन्धी
२५	१७	रस ना	रसना

सत्यासत्य निर्णय

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२६	१४	वयर्थ	व्यर्थ
२७	१८	मूख	मूर्ख
२८	५	का	को
२८	१३	भाग	भोग
३१	१२	अमत्ते	अपने
३३	१०	अवतो	अवतो
३३	१५	उत्तराध्ययान	उत्तराध्ययन
३४	२	चाहिते	चाहते
३४	१६	पछ	पूछ
३५	१४	कुच्छ	कुछ
३६	६	उसे	उस से
३६	११	पीच्छे	पीछे
३८	१२	वह	वे
३८	१८	जन	जैन
३९	३	द्रौपदी	द्रौपदी
३९	१६	का	की
४०	१८	अचन	अर्चन

सत्यासत्य निर्णय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
४०	१०	त्रिमीषेव	त्रिमाषेव
४४	१५	द्वितीय	द्वितीय
४५	७	ता	तो
४५	१९	त्यथार	तस्यार
४८	१	मोक्षात्माभी	मोक्षात्माभी
४८	१४	का	की
४८	१६	का	को
५१	१६	तकतो	तकता
५२	१	देव की देव	देव की मूर्ति देव
५२	३	ब्रह्मवैकांतिक	ब्रह्मवैकांतिक
५३	८	न शब्द की अधिकता	
५३	४	स्वाध्यायादि	स्वाध्यायादि
५५	१०	आप	आप
५५	१४	मी	मी
५७	१२	पद	पद
६१	४	क्रियाङ्म्बरो	क्रियाङ्म्बरो
६४	६	माह	माह

सत्यासत्य निर्णय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
६५	७	कल्पिन	कल्पित
६१	१८	संयपम्मज्जो	सयमपम्मज्जो
८२	१८	का	को
८३	१५	नमूना	नमूने
८३	१७	जाते	जाते हैं
८३	१८	पढने	बढने
८४	२	सुमति	समिति
८५	४	पण्डी	दण्डी
८८	८	भार्गी	मार्गी
९२	५	द्वपान्धता	द्वेपान्धता
९४	७	परस्पर	परस्पर
९७	१०	माक्ष	मोक्ष
१००	३	कुडि	तुंडि
१००	६	हाथ म	हाथ में
१०२	६	पूच्छी	पूछी
१०६	१	सुरिजन	सुरीश्वर जी
११५	९	पण्डित्य	पाण्डित्य

पृष्ठ	पंक्ति	अष्टम रूप	शुद्ध रूप
११६	७	आवरणकता	आवरणकता
११६	७	उद्देश्य	उद्देश्य
११६	१७	का	की
१२४	११	पञ्जर	पञ्ज
१२७	१	परिक	बलिक
१३५	१	डाक	डाका
१३६	१२	धरमै	धरमै
१३६	१८	तस्सखी	तसखी
१३८	९	खिख	खिख
१४०	१८	बैदिक	बैद्यक
१४१	१५	वप्रोक्त	वप्रोक्त
१४३	५	परिज्जायपरम्भय	परिज्जाय पखिष्य
१४४	१६	दिग्दर्शन	दिग्दर्शन
५७	११	मिथ्या	मिथ्यात्व
६६	१६	,	"
८०	४	बोधिप	बैमिप
८८	४	नमस्कार	नमस्कार
१०२	११	अभ्यधा	अभ्यधा
१०७	१२	प्रवृत्ति	प्रवृत्ति
११६	५	पाणिद्वय	पाणिद्वय

सत्यासत्य निर्णय

भूमिका

प्यारे सज्जनो ! जो यह सत्यासत्य निर्णय नाम की छोटी सी पुस्तक आप के कर कमलों में सादर भेंट की जाती है, इस का अभिप्राय है अविद्या और जहालत से फैलते हुए मिथ्यात्व और पाखण्ड का विनाश करना ।

सज्जनो ! आज इस कलियुग में अनेक प्रकार के झूठे और मतिकल्पित मतमतान्तर दिन प्रति दिन बढ़ते ही जा रहे हैं । जो भी उठता है, वही प्राचीन शुद्ध सच्चे धर्म को छोड़कर नया मत अपनी मान बढ़ाई के लिए खड़ा करने की कोशिश करने लग जाता है । जिस का भयकर फल यह हुआ कि आजभारतवर्ष में अनुमान २२०० मत गिने जाते हैं। उस नए मत में चाहे सच्चाई हो, या न हो, लेकिन बहुत सारे मान प्रतिष्ठा के भूखे, नए मत चलाने वालों का मुख्योद्देश्य यह होता है कि हमारी दुनिया में किसी न किसी तरह बाह २ हो जाए, और तबसे हमें अपना नेता समझकर हमारा मान और सत्कार बढ़ाए। किन्तु ऐसे मान और

सत्यासत्य निर्यय

प्रतिष्ठा के मूलों ग्राहकों के मति कक्षित सिद्धान्त, विद्वान् समाज के समस्त कभी भी अपनी सच्चाई प्रगट करके संसार के कल्याण कर्ता नहीं हो सके हैं ।

अतः सच्चाई को प्रगट करने के लिए मिथ्यात्व और आहम्बर से संसार का बचाप रक्षने के लिए पुस्तक की शृङ्खला में यह एक पुस्तिका आप की सेवा में सादर भेंट करते हैं । हमें पूर्ण आशा है कि आप विद्वान् समाज इस को पढ़कर झूठ और सत्य का निर्यय करके झूठ और मिथ्या पाखण्ड का परित्याग करेंगे और सत्य को ग्रहण करके भगवान् महाबोत स्वामी के बतलाए हुए सच्चे मार्ग पर चलने की कोशिश करेंगे । हमारा परिश्रम तभी सफल समझा जाएगा यदि आप झूठ का परित्याग कर सत्य को ग्रहण करेंगे ।

हम समाज का धेनुक :

विद्योरो गण्यमान ।



स्व० क० हनुमान झाग जी के पूरव पिता क० गुरी
चाह जी ।

सत्यासत्य निर्णय

चित्र परिचय

श्रीमान् जैन समाज भूषण स्व० ल० हरदयाल जी को कौन नहीं जानता? विशेषतः पंजाब का जैन समाज का वज्रार इस नाम से भली भान्ति परिचित था। आप दानवीर सेठ ल० चून्नी शाह जी के सुपुत्र थे। ल० चून्नी शाह जी ने एक महीने तक स्व० श्री श्री १००८ शान्ति के देवता, त्यागमूर्ति, गणावच्छेदक, पं० मुनि श्री लाल चन्द्र जी महाराज की बीमारी पर निज व्यय से बाहिर से आने वाली हजारों की सख्या में सगत का भोजनादि का प्रबन्ध करके अनुपम लाभ लिया था। स्व० ल० हरदयाल शाहजी जैन विराटरी स्थानकोट के गण्यमान व्यक्ति थे। आप की स्वभाव सरलता तथा दया शीलता उल्लेखनीय है। समाजकार्य में आप हर प्रकार से सहयोग दिया करते थे। आप की उदारता आप के उच्च गौरव का प्रथम स्तम्भ है। आप की अनन्य गुरु भक्ति भी अनुपम ही थी, जिस का जीता जागता प्रमाण यह है कि जब

सत्पासत्य निर्देष

वे० मुनि जैन भूषण भी स्वामी प्रेम चम्पू जी महाराज वीर जयन्ती के शुभ अवसर पर जम्मू में विराजमान थे, तो अत्याग्रह पूर्वक स्पासकोट में चतुर्मास करने की विनति करते हुए आप ने यह ठहराया प्रगट की थी कि महाराज भी स्पासकोट में ही चतुर्मास करने को कृपा करें और दर्शनार्थ बाहिर से आने वाली संगत का भोजन प्रबन्ध जेबल हमारी ओर से हो जागा किन्तु निर्देषी काज को ऐसा शुभ अवसर आप का ऐसा संसूर नहीं था। अर्थात् अमायास ही आप की निर्देषी काज में ग्रस्त किया। आप की इस अचानक मृत्यु से ज० बूझो शाह जी का और जैन विरादरी स्पासकोट का एक महान् हृदयविदारक दुःख पहुँचा। ऐसा होने पर भी ज० बूझो शाह जी ने हर प्रकारकी उत्साह पूर्वक सेवा का चतुर्मास में काम ठठाया। वास्तव में स्व० ज० हरदयाल शाह जी ने जैन विरादरी पर इतना उपकार किया है जिस का बहका ऐसा स्पासकोटवासी समाज के किए असम्भव नहीं तो कठिन अथर्व है। निवेदक :-

पिशौरी काज जैन दिग्वी प्रभाकर।

मेरे दो शब्द

(लेखक :- ल० पिशौरी लाल जैन हिन्दी प्रभाकर टीचर जैन माढरण हाई स्कूल स्यालकोट शहर) ।

सज्जनों ! परम प्रतापी, बाल ब्रह्मचारी श्री श्री १००८ स्व० पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज के पट्ट को सुशोभित करने वाले, जैन शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान, पंजाब केशरी, वर्तमान आचार्य पूज्य श्री कांशी राम जी महाराज के सम्प्रदाय के स्व० पंजाब कोयल श्री श्री १००८ श्री स्वामी मया राम जी महाराज के सुशिष्य बाल ब्रह्मचारी स्व० श्री श्री १००८ श्री स्वामी वृद्धि चन्द्र जी महाराज के सुशिष्य जैन भूषण, पण्डित मुनि श्री श्री १००८ श्री स्वामी प्रेम चन्द जी महाराज का हमारे परम भार्ग्योदय से इस वर्ष (१९९८)

स्याकफोट में ही चतुर्मास हुआ । यद्यपि महाराज श्री के चौमासे के होने की बहुत कुछ सम्भावना क्षेत्र पट्टी में ही थी पर यहाँ पर बिर काज से विराजित शाश्वत स्वभावी गयाबफोटक भी भी १००८ श्री स्वामी गोकुल चन्द जी महाराज की अति प्रेरणा से और द्रव्य क्षेत्र काज भाव को विचारते हुए महाराज श्री प्रेम चन्द जी ने स्याकफोट की विराहरी की बिनती का ही स्वीकार कर स्याकफोट की जगता का अपने अमृत भरे सरोवर में नहाने का शुभ अवसर दिया ।

पूज्य गुरुदेव ! आप की विशाल गुणावली का वर्णन करना मेरे जैसे तुच्छ सेवक के लिए असम्भव है । न ही मेरी पैदा में इतनी शक्ति है कि आप के गुणों का गान कर सकूँ । और न ही मेरी पैरानी में इतनी शक्ति है कि आप के गुणों का मन्त्र भी बद्ध कर सकूँ तो भी इह्य के दर्गार निरुद्धन स्वाभाविक ही है ।

व्याख्यान घात्रस्पत । आप के व्याख्यान

में अलौकिक आकार्पण शक्ति विद्यमान है, जिस से एक बार भी व्याख्यान सुन लेने पर श्रोता गण मन्त्र मुग्ध हो जाते हैं। जहां बीस २ पच्चीस २ हजार की जनसंख्या में बड़े २ लीडर भी लौडसपीकर के बिना जनता तक अपनी आवाज नहीं पहुंचा सकते, वहां आप बिना लौड सपीकर के ही प्रत्येक मानव के हृदय पर अपने व्याख्यान की गहरी छाप मार देते हैं। स्यालकोट में यूनिटी कान्फरेंस पर राम तलाई में होने वाला भाषण भला किस स्यालकोटो की याद न होगा। और लाहौर जैसे विद्वानों के केन्द्रीय स्थान में भी आप ने सम्पादक मिलाप महाशय खुशहाल चन्द के अति अनुग्रह करने से गुरुदत्त भवन जैसे विशाल पण्डाल में पण्टी पाकिस्तान कान्फरेंस के अवसर पर ३०, ३५ हजार की जन संख्या की विराट सभा में बिना लौडसपीकर के ही महावीर स्वामी के कर्मवाद और आस्तिकता के सिद्धान्त को अति मनोहर और ओजस्विनी शब्दों में जनता के सम्मुख रक्खा और डके की चोट से जनता को

बतका दिया कि जैन कहूर आस्थिक हैं । साथ ही इस विषय को भी मन्त्री प्रकार से पण्डित को दर्शा दिया कि भारतवर्ष की सम्यता हिन्दुत्व की सम्यता को ही बिण्ड रूप है । यदि भारतवर्षों अपनी हिन्दू सम्यता का मन्त्री प्रकार वाक्य करें, तो आपस में किसी भी प्रकार का वंर विरोध का कारण नहीं रह सकता । फूट के मुख्य कारण चार हो हैं :- १ धर्मवाद की विषमता । २. शास्त्रों का भेद । ३ ईश्वरवाद का मत भेद । ४ धर्म स्थानों की विषमता । यदि फूट के इन ४ कारणों का उद्धारता पूर्वक बुद्धिमता से सुझाया गया, तो फिर पाकिस्तान आदि योद्धाओं का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । इन फूट के चार कारणों की गुत्थी को महाराज श्री ने बड़े सरल और भावपूर्ण शब्दों में सुझाया । इस प्रकार के सार्वजनिक भाषण को सुन कर क्या साधारण और क्या विद्वान सभी मनता अति सन्तुष्ट हुई और अपने मुक्त कण्ठ से भाषण की मूरी २ प्रशंसा भी की ।

जाति सुधारक ! आप की भावना सदा

जाति के सुधार की ओर लगी रहती है । आप जैन जाति को पतन से बचा कर उत्थान की ओर लगा रहे हैं । जहा स्थानक वासी जैन समाज मिथ्यात के प्रबल प्रवाह में बही जा रही थी, और लोग मढियों मसानियों आदि से धन दौलत को याचना करते थे वहां आप ने शुद्ध कर्मवाद का उपदेश देकर लोगों की आँखों से अज्ञान का परदा हटा दिया । जिस से जैन समाज पाखण्डियों के के आडम्बर के पजे से विमुक्त होकर सन्मार्ग की ओर अग्रसर हो रही है ।

ज्ञान निधान ! आप ज्ञान की खान हैं ।

आप के ज्ञान को सुन कर अनेक मानव वाहिय क्रियाडम्बरों का परित्याग कर शुद्ध अहिंसामय सच्चे जैन धर्म का पालन करने लग गए हैं । सूर्य की रौशनी रात को दिखाई नहीं देती और न ही प्रत्येक जगह पर पहुँच सकती है, पर आप वह सूर्य हैं जो दिन और रात दोनों समय प्रत्येक मानव के हृदय को अपने ज्ञान की किरणों से

प्रकाशित कर रहे हैं।

देश उद्धारक ! आप ने अपने सदुपदेशों में यह बतला दिया है कि शुद्ध राष्ट्रोत्थान क्या वस्तु है ! भाति और देश का क्या सम्बन्ध है ! मनु और जेतन में क्या भेद है ! यह आप के सदुपदेशों का ही प्रभाव है कि स्वामकोट आदि नगरों में कई पुष्पों ने शराब और मांस का परित्याग कर शुद्ध जीवन के सच्चे धर्म का अपनाना है और कई नगरों में प्रम बेमिटेरियन सोसाइटियाँ स्थापित हो रही हैं।

पूज्यपाद महात्मन ! आप एक अमूर्त महात्मा हैं। आप के अमृत भरे उपदेश मानव को सत्य और प्रेम का पाठो बना देते हैं।

प्रेममूर्ते ! जैसा आप का नाम है वैसे ही आप में गुण हैं। आप के ऊपर 'वया नाम तथा गुण' वाक्य कोकोक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। पंजाब प्रान्त में भ्रमण कर अभी तहाँ पैस पैस जैन सभाओं को स्थापित कर आप ने एक बड़ा

महत्व पूर्ण कार्य किया है; जिस से पंजाब प्रान्त में जैन समाज का पुनरुत्थान हो गया है। इस के लिए स्थानकवासी जैन समाज आप की चिर काल तक ऋणी रहेगी।

जैन भूषण ! वास्तव में आप एक अलौकिक भूषण हैं। धन्य हैं वह माता और पिता जिन्होंने आप जैसे नर रत्न को जन्म दिया। भाग्य शाली हैं वह देश, जहाँ पर धर्मोद्देश के लिए आप का शुभ विचरण हुआ, अपितु अति भाग्यवान् हैं वह व्यक्ति जिसने एक बार भी आप के अमृत भरे उपदेश का श्रवण किया। भूषण घस २ कर कम हो जाता है और उस की चमक भी जाती रहती है, पर आप एक ऐसे भूषण हैं जो अधिक २ समय के व्यतीत होने पर भी अधिक देदीप्यमान और फान्ति वाता होता जाता है।

सत्यवक्ता ! आप सत्य के अनन्य उपासक हैं। सच्चाई प्रकट करने में आप जरा भी सकोच नहीं करते। जहाँ लोग पाखण्ड रचा कर अपने

धर्म का परित्याग करके भी दूसरों को धोका देकर अपने साथ मिथाने का प्रयत्न करते हैं। यही आप सत्य का सिंह नाह बना कर सत्य के द्वारा ही लोगों को धर्म प्रेमी बना देते हैं।

दयानिधान ! आप की नस २ में सहारता और अतु २ में धार्मिक त्याग रूप वीरता विद्यमान है। आप हैं सद्धर्म प्रचारक आप हैं धर्म प्रभावक आप हैं उपातिधर आप हैं बादिमुक्तभक्त आप में हैं कला निरुत्तर करम की आप में है शक्ति प्राप्त करम की बरसता है पूर आप के चेहरे से बरसती है वीरूपधारा आप के मुखार बिन्दु से सम आती हैं शही पुक्ति और प्रमाणों की जब आप देते हैं व्याख्यान। आप की अजीबक निम्न आहूति पर दृष्टान्त होते ही सब के हृदय में शक्ति और प्रेम भावना की तरंगे उछलने लगती हैं दर्शन करत २ दृति नही हानी विषय हो मुख में यही निकल पड़ता है कि आप सत्यवक्ता परम तादसी निभीक विशेषण परम पुण्याधी बाक ब्रह्मचारा प्रेम मूर्ति दूरदर्शी धीर वीर गम्भीर

और पवित्र साधु जीवी हस्ती हैं ।

श्री शासनेश से यही प्रार्थना है कि आप दीर्घ जीवी हों और जनता को सदा अपने पवित्र अमृतोपदेशों से कृतार्थ करते रहें ।

आप के चरणों की धूलः—

पिशौरी लाल जैन पसरूरी ।



❀ सत्यासत्य निर्णय ❀

मूर्तिपूजा निराकरण के विषय में प्रश्नोत्तर

श्री भगवान् महावीर स्वामी जी ने मोक्ष प्राप्ति के मुख्य तीन ही साधन बतावाए हैं - १. सम्यक ज्ञान । २. सम्यक दर्शन । ३. सम्यक चारित्र्य अर्थात् सच्चा ज्ञान सच्चा भद्रानि और सच्चा चारित्र्य।

सम्यक ज्ञान (सच्चा ज्ञान-किस का कहते हैं) यह बात धर्म प्रेमी सज्जनों को विशेष रूप से विचारणीय है। सच्चे ज्ञान का अर्थ है-दुनिया में होते हुए पदार्थों को अपने २ गुण स्वभाव में ठीक रूप से जानना अर्थात् अड़ का अड़ और चेतन को चेतन झूठ का झूठ और सत्य को सत्य धर्म को धर्म और अधर्म को अधर्म पुण्य को पुण्य और पाप को पाप एक इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक हमें बाकी हिंसा का हिंसा और एक इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक की की जाने वाली इया का इया, इस प्रकार इन सब चीज़ों को ठीक-२ रूप

में जानना ही सम्यक् ज्ञान है । और पूर्वोक्त कथन किष्ण हुए पदार्थों को विपरीत रूप से जानना सम्यक् ज्ञान नहीं, अपितु उसे ज्ञान, अविद्या और जहालत समझना चाहिए । जैसे कि अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म, जड को चेतन और चेतन को जड, सच्चे साधुओं को असाधु और एक इन्द्रिय आदि जीव हिंसा में मोक्ष फल की प्राप्ति बतलाने वाले असाधुओं को साधु, बनावटी देव को असली देव मानना, ये सब बातें अज्ञान और मिथ्यात रूप ही हैं । ऐसी गलत धारण को जैन शास्त्र अज्ञान मानता है । ज्ञान का अर्थ है जानना अर्थात् ठीक को ठीक और गलत को गलत समझना ही सम्यक् ज्ञान है । शास्त्रकारों ने ज्ञानी का लक्षण बतलाया है :-

“एयंखु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ
किंचणं अहिंसा समयं चव, एतावतं
वियाणिया” ।

इत गाथा का भावार्थ है कि ज्ञानी के ज्ञान का

सार यही है कि किंचित मात्र भी किसी प्राणी को हिंसा न करे, और यदि ज्ञानी होकर हिंसा करता है और दूसरों से करवाता है और करने वालों को अच्छा समझता है ता वह एक प्रकार का अज्ञानी ही है ।

प्यारे सज्जनों ! जो अपने आप को शास्त्र वेत्ता और पण्डित ज्ञान मिथि आदि २ उपाधियों से अलंकृत किए हुए है और फिर भी अज्ञानी मूर्ख जीवों की तरह अज्ञानता के कारण जीव हिंसा में धर्म मानता है और दुनिया की हिंसा में धर्म बतलाता है वह बहुत सारे शास्त्र पढ़ लेने पर भी अज्ञानियों में ही गिना जाता है; क्योंकि ज्ञानी वह है जो एक इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक जीव हिंसा में धर्म नहीं मानता है और न ही एक इन्द्रियादि जीव हिंसा में धर्म हान का दूसरों का उपदेश देता है बहुत सारे भूटे मतावलम्बियों का यह कहना है कि एक इन्द्रिय आदि जीवों की वैषम्य आदि धर्मक्रियाओं में जो हिंसा की जाती है वह हिंसा बहुत दुःख रूप फल देने वाली नहीं है किन्तु उस हिंसा का फल सुख रूप दुःख ही

होता है। (प्रमाण के लिये देखिए दण्डी ज्ञान सुन्दर जी कृत “हां मूर्ति पूजा शास्त्रोक्त है” । नाम वाली पुस्तक का पृष्ठ ७७) ।

प्यारे सज्जनों ! ऐसा खोटा उपदेश देकर हिंसा का फल भी सुख रूप बतलाना यह अज्ञान नहीं तो और क्या है ? हिंसा में धर्म न हुआ है, न है, और न होगा । एक जैन पण्डित बनारसी दास ने भी ‘समयसार नाटक’ नाम के ग्रंथ में इस विषय पर कहा है .—

॥ सवैया ।

“अग्नि में जैसे अरिविन्द न विलोकियत,
सूरज अथ में जैसे वासर न जानिए ।
साँप के वदन जैसे अमृत न उपजत,
ताल कूट खाए जैसे जीवन न मानिए ।
कलह करत नहीं पाइए सुजस यस,
वाढत रसास रोग नाश न बखानिए ।
प्राण बध हिंसा माहि, धर्मकी निशानी नाहि,
याही ते बनारसी विवेक मन आनिए ।”

इस सबैये का भाषाथ है कि अग्नि में कमज नहीं उगते सूर्यास्त होने पर दिन का अस्तित्व भाव नहीं रहता क्लेश करने से यश प्राप्त नहीं होता सर्व के सुख से अमृत पैदा नहीं होता सुहर खाने से जीवन जीवित नहीं रह सकता रसास के बढ़ने से राग का भाश नहीं होता । ये असम्भव सी बातें तो सम्भव हो जाय किन्तु एक इन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा में धर्म कहाँ नहीं हो सकता । शास्त्र में भी कहा है -

“निम्बो न होई इच्छु सारिच्छं,
 इच्छु न होई निम्बोसारिच्छं ।
 हिंसा न होई सुख,
 नहु तु खं अभय दायेणं ।”

इस गाथा का भाषाये है कि कटुक स्वभाव वाली नीम मीठी नहीं हो सकती और जो मधुर स्वभाव वाला मीठा है वह नीम की तरह कटुक नहीं हो सकता ऐस हो तु क देन वाली हिंसा से

सुख नहीं हो सकता, और सुखदाता अभय दान रूप दया से किसी भी प्राणी को दुःख नहीं हो सकता । इस गाथा का सारांश रूप भाव यह निकला कि हिंसा से कभी भी सुख नहीं हो सकता । भगवान् महावीर स्वामी जी ने दशवैकालिक सूत्र में भी फरमाया है :-

“सर्वे जीवा वि इच्छन्ति जीवि उं,
न मरिज्जि उं, तम्हा पाणि व्हं घोरं
निगंथा वज्जयंति णं” ।

इस गाथा का भावार्थ है कि सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता है, इस लिए साधु आत्माएँ प्राण वध रूप हिंसा का सर्वथा त्याग करें और जो साधु नाम धराकर मूर्ति पूजनादि के निमित्त की गई हिंसा का फल सुख रूप बतलाते हैं और उस हिंसा को भगवान की आज्ञा सयुक्त कहते हैं । उन का यह कहना बिल्कुल मिथ्या है, क्योंकि हिंसा तो हर अवस्था में हिंसा ही मानी जायगी, चाहे वह किसी भी क्रिया के लिए क्यों न

की आप । जिस तरह पंच इन्द्रिय जीव मेड़ बकरी बुम्बा भैंसादि की बत्ती को देवी देवता के नाम पर दैते बाळों को पापी अधर्मी और हिसक समझा जाता है । इसी प्रकार की देव पूजमादि के निमित्त एक इन्द्रिय भादि जीवों की की गई हिंसा भी पाप से ब्याप्यो नहीं मानी जा सकती । यदि पंच इन्द्रिय को अपनी जान प्यारी है, तो एक इन्द्रिय जीव को भी अपनी जान प्यारी है । कोटिपति का करोड़ सत्पति को बाध इतार बाधे का इतार, इस बाधे को इस और एक बाधे का एक अपने २ स्वये प्यारे हैं । इस तरह से पंच इन्द्रिय चार इन्द्रिय तीन इन्द्रिय दो इन्द्रिय और एक इन्द्रिय भादि जीवों को भी अपने २ प्राण स्वयं धन प्यारा है । करोड़ स्वयं की चारों करण बाधे को भी चार बाध इतार, इस व एक स्वयं की चोरी करमे बाधे को भी चोर ही कहा जाता है । इसी प्रकार पंच इन्द्रिय से से कर एक इन्द्रिय तक के जीवों के प्राणों को किसी भी कार्य के लिए बूझने बाधे को इन जीवों का हिंसक ही कहा जाता है ।

एक बात और भी आप सज्जनों के सामने रखी जाती है कि एक राज पुत्र है, एक वजीर का, एक तहसीलदार का, एक ठानेदार का, और एक गरीब से गरीब मनुष्य का है। अगर राजा की प्रजा में से कोई मानव इन निंदोप लडकों को राजा के लिए मार कर न्यायदाता राजन् को प्रसन्न करना चाहे, तो क्या राजा उस मानव से प्रसन्न होगा ? उत्तर है "नही"। इसी तरह दयालु, कृपालु, पूर्ण अहिंसक तीर्थंकर देव जो हैं, उन के निमित्त की गई हिंसा से न ही वे संतुष्ट हो सकते हैं और न ही उन के निमित्त की गई हिंसा में धर्म हो सकता है।

प्यारे सज्जनों ! भगवान् एक प्रकार के धर्म रूपी देवाधि देव राजा हैं, और एक इन्द्रिय से लेकर पच इन्द्रिय तक के जीव ये उन की प्रजा हैं। इन जीवों की हिंसा से कभी भगवान् संतुष्ट नहीं हो सकते, और न ही उन के निमित्त की गई हिंसा में पुण्य या धर्म हो सकता है।

प्रश्न - क्या मूर्ति पूजा प्रमाणिक जैन शास्त्रों से सिद्ध है ?

अष्टक :- मही ४ -

प्र० १ :- कौन से शोक में निषेध है ?

उ० १ :- मूत्र भी वृषावैकादिक भी के सातव
अध्ययन की पाँचवीं गाथा में लिखा है :-

“वितहं पी तहा मुर्त्ति, जं गिर भासए नरो
तम्हा सो पुढो पावेण, किं पुण जो
मुम धए” ।

इस गाथा का भावार्थ है ‘जो गुण रहित मूर्ति को तथा रूप गुणवाली मूर्ति कहता है इतना कहने मात्र से ही वह नर पाप कर्म का भागी बनता है ।’

प्रिय सज्जनों ! जब इस गाथा के अनुसार गुण रहित मूर्ति को तथा रूप गुण वाली मूर्ति कहने मात्र से ही पाप कर्म का बन्ध होता है तो केवल (पापाज) आदि की निर्गुण मूर्ति की फल पूजा द्वारा आरम्भ समाप्त करके पूजा करने वाले का तो न मालूम कितना बड़ा पाप कर्म का बन्ध होता होगा ।

बहुत सारे जड़ मूर्ति पूजक जैन धर्मात्मवियों का कहना है, “कि जितने गुण सिद्धात्माओं में हैं, उतने ही गुण उन की पत्थर आदि को बनाई हुई जड़ मूर्ति में हैं। (इस के प्रमाण के लिए देखिए ढण्डी ज्ञान सुन्दर जी कृत “हां मूर्ति पूजा शास्त्रोक्त है” । नाम वाली पुस्तक का पृष्ठ १०) जिस प्रकार जड़ मूर्ति में सिद्धों के बराबर गुण बतलाए हैं, इन की धारणानुसार उसी प्रकार अरिहत, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि की कल्पित मूर्ति में भी अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि में होने वाले गुण भी ये लोग बराबर ही मानते होंगे। प्यारे सज्जनों! यह कितनी हास्य-प्रद और अज्ञानता सूचक बात है! कि जितने गुण केवल ज्ञान, केवल दर्शन, संयुक्त जन्म मरण से रहित, सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, सच्चिदानन्द, सिद्ध परमात्मा में हैं, उतने ही गुण इन की नकली बनाई हुई एक जड़ मूर्ति में हैं। इस से यही सिद्ध हुआ कि एक घड़ के तय्यार किया हुआ, किसी विशेष आकृति वाला पत्थर और सिद्ध, बुद्ध, अजर,

उत्तर :- मही ३ ।

प्र० १ :- कौन से शास्त्र में निषेध है ?

उ० :- सूत्र भी तृतीयैकान्तिक भी के साथ अक्षयपत्र की पंचमी गाथा में लिखा है :-

“वितहं पी तहा मुर्त्ति, जं गिर भासए नरो
तम्हा सो पुहो पावेण, किं पुण जो
मुस वए” ।

इस गाथा का भावार्थ है ‘जो गुण रहित मूर्ति को तथा रूप गुणवाली मूर्ति कहता है इतना कहने मात्र से ही वह नर पाप कर्म का भागी बनता है ।

प्रिय सज्जनों ! जब इस गाथा के अनुसार गुण रहित मूर्ति को तथा रूप गुण वाली मूर्ति कहने मात्र से ही पाप कर्म का बन्ध होता है तो वैमान (वापान) भादि की निर्गुण मूर्ति की कस पूज द्वारा आरम्भ समारम्भ करके पूजा करने वाले का ता न मात्र कितने महान पाप कर्म का बन्ध होता होगा ।

पशु पक्षियों को भी असल और नकल का ज्ञान है और वे असल को छोड़ कर कभी भी नकल को नहीं अपनाते, जैसे कि बिल्ली बनावटी तोते पर कभी भी आयमण नहीं करती। बच्चे बनावटी खड्ड के सर्प से नहीं डरते। मनुष्य और पशु आदि नकली बनाई हुई शेर की आकृति को देख कर उस से कभी भी भयभीत नहीं होते, क्योंकि वे समझते हैं कि यह शेर नकली है, असली नहीं। भाइयो ! हमें उन जड़ मूर्ति पूजक जैनों की बुद्धि पर बड़ा शोक प्रकट करना पड़ता है कि पशु पक्षियों को तो असली और नकली का ज्ञान है, किन्तु उन्हें असल और नकल का स्वप्नान्तर में भी ज्ञान नहीं। ऐसे अज्ञानियों से तो किसी अश में पशु पक्षी ही बुद्धिशील हैं, जो असल और नकल का ज्ञान रखते हैं, और नकल को छोड़ कर असल को ही अपनाते हैं। बनावटी जड़ देव से कभी भी असली देव के द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान, ध्यान आदि गुण प्राप्त नहीं हो सकते।

प्रश्न:—आप ने कहा है कि असली और

अमर, परम पवित्र सर्वगुणाब्जदृष्ट सिद्ध परमात्मा बराबर ही हैं। धर्म्य है इन मङ्ग मूर्ति पूजक जैन उपासकों की बुद्धि को। जिन्होंने मैं एक पापायात्रि को मङ्ग मूर्ति और सिद्ध परमात्मा को एक समान ही ठहराया है। यही तो इन के सम्यक् ज्ञान का एक समीक्षित प्रमाण है। क्या ही भावो दुनिया के आगे नम्र और ताण्ड्य नृत्य का डकौसका रख कर सम्मार्ग पर चलने वाली दुनिया को पतित करने का रास्ता अपनाया है। अगर एक को पति के मर जान पर अपने पति देव की मूर्ति बनाकर उस मूर्ति से अपना पति सौभाग्य बनाए रखना चाहे तो क्या वह उस मूर्ति से अपने पति सौभाग्य का कायम रख कर लयना करवा सकती है ? उत्तर स्पष्ट है "नही"।

प्रश्न - क्यों साहिब ! वह को पति की मूर्ति पास होने पर भी पति सौभाग्यनी क्यों नहीं करवा सकती ?

उत्तर - क्योंकि उस मङ्गली मूर्ति में पति में होने वाले शूर वीर और कुटुम्ब रक्षा देश

पशु पक्षियों को भी असल और नकल का ज्ञान है और वे असल को छोड़ कर कभी भी नकल को नहीं अपनाते, जैसे कि बिल्ली बनावटी तोते पर कभी भी ध्यायमण नहीं करती। बच्चे बनावटी रबड़ के सर्प से नहीं डरते। मनुष्य और पशु आदि नकली बनाई हुई शेर की आकृति को देख कर उस से कभी भी भयभीत नहीं होते, क्योंकि वे समझते हैं कि यह शेर नकली है, असली नहीं। भाइयो ! हमें उन जड़ मूर्ति पूजक जैनों की बुद्धि पर बड़ा शोक प्रकट करना पड़ता है कि पशु पक्षियों को तो असली और नकली का ज्ञान है, किन्तु उन्हें असल और नकल का स्वप्नान्तर में भी ज्ञान नहीं। ऐसे अज्ञानियों से तो किसी अश में पशु पक्षी ही बुद्धिशील हैं, जो असल और नकल का ज्ञान रखते हैं, और नकल को छोड़ कर असल को ही अपनाते हैं। बनावटी जड़ देव से कभी भी असली देव के द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान, ध्यान आदि गुण प्राप्त नहीं हो सकते।

प्रश्न:-आप ने कहा है कि असली और

नकुली का पशु बली भी जान सकते हैं जैसे कि बिछी नकुली तोले पर आक्रमण नहीं करती यदि ऐसा ही है तो बनावटी कागज़ की हथिनी पर महोष्मत्त हाथी आक्रमण क्यों करता है ?

उत्तर:-वह पशु रूप हाथी कहानी है । वह कामाग्नि से बिहुल शक्ति पर एक प्रकार का आर्से रखने पर भी सज्जा हो है । इस विषय पर एक कवि ने भी क्या हो सज्जा कहा है -

‘काम क्रोध सह आरसी शिशु लिया मरकाग
होत क्याना बापका आठ ठौर बिछ जाग’ ।

इस वाक्य के भाव से स्पष्ट सिद्ध हो गया कि कामाग्नि भी एक प्रकार का सज्जा हो जाता है ।

हाँका:-सभी कुछ भी हो उस महोष्मत्त हाथी ने नकुली हथिनी पर आक्रमण तो किया ।

हाँका का समाधान:-फिर इसे कब भी क्या हुआ, चाकिर नकुली हथिनी को वास्तविक हथिनी समझ कर उस पर आक्रमण करने से नहें वे गिर कर भूके प्यासे रह कर हाथी को बुरी तरह घाव

और जाति सेवा आदि गुण नहीं हैं, और न हो उस नकली फोटो से सन्तान प्राप्ति हो सकती है। बस, अगर फोटो या पति की मूर्ति से कोई स्त्री अपने को सौभाग्यवती नहीं कहना सकती, और न ही उस नकली मूर्ति या फोटो से सन्तान फल प्राप्ति कर सकती है, तो समझ लो कि तीर्थंकरों की बनावटी मूर्ति भी हमें ज्ञान, ध्यान, आत्म विचार और मोक्ष सुख प्राप्ति रूप फल नहीं दे सकती।

प्र०.—क्या मूर्ति देखने मात्र से हमारे में सिद्ध या अरिहन्तों के गुण आ सकते हैं ?

उत्तर.—नहीं। जिस तरह एक बनावटी नकली आम को देख कर उस को असली आम की कल्पना कर लेने से असली आम के रस की प्राप्ति नहीं हो सकती, और न ही गुलाबादि के बनावटी फूल को देख कर असली गुलाब के फूल से आने वाली सुगंध उस नकली फूल में से आ सकती है। अगर नकल में असल वस्तु के गुण आ जाए तो उसे नकली ही क्यों कहा जाए, इस का कारण यही तो

हैं कि नकली में असली के गुण नहीं हैं । ध्याने
 सज्जनों ! यदि आत्म कल्याण चाहते हो और सच्चे
 देव गुण की सेवा करके मोक्ष प्राप्ति चाहते हो तो
 असली और नकली को पहचान करो । अमर
 मनुष्य जन्म को पा कर असल और नकल का
 ज्ञान प्राप्त न किया तो बड़े दुःख से कहना पड़ता
 है कि उस ज्ञान बिहीन मनुष्य में और पशु में
 कोई विशेष फरक नहीं है । मिय सुन पुण्यो !
 पशुओं का भी असल और नकल का ज्ञान होता है ।
 एभिष्य ! भयरा असली गुलाब के फूल का छाड़ कर
 कभी भी बनावट हुए नकल गुलाब के फूल पर नहीं
 बैठता क्योंकि वह जानता है कि इस नकली फूल में
 जिस सुगन्धित पुष्प से मैं प्रेम रखता हूँ वह सुगन्ध
 इस में नहीं है ।

पक्षी भी अगर रंग के असली अण्ड की जगह
 नकली अण्डा हूबहू उसी शक्ल और रंग रूप का
 बना कर रख दिया जाए तो वे उस नकली अण्डे
 का वापस भूख कर भी नहीं करते क्योंकि वे समझते
 हैं कि वे अण्डे बेजान और नकली हैं । ऐसी ही कि

देने पड़े, अथवा बन्धन में पड़ कर बन्धी होना पडा । उम हाथी की तो कामाग्नि की विह्वलता से सुध, बुद्ध ठिकाने नहीं थी, क्या मूर्ति पूजक जैनों की भी सुध बुद्ध ठिकाने नहीं है ? जो कल्पित देव से मोक्ष फल की प्राप्ति चाहिते हैं । जो कल्पित जड़ तीर्थकर मूर्ति को असली देव बुद्धि से पूजते हैं, उन्हे भी मिथ्यात रूप गढ़े में पड़ कर ससार में जन्म मरण रूप दुःख उठाने पड़गे । अब तो आप अच्छी तरह समझ गण होंगे, कि नकली में असली की कल्पना करने से हाथी का तरह केंसी दुर्दशा होती है ।

प्रश्नकर्ता का उत्तर .—अजी मैं खूब अच्छी तरह समझ चुका हू कि नकली से असली वस्तु भावी गुण प्राप्त नहीं हो सकता, और मैं तो आज से ही जड़ोपासना को त्यागता हू और चौन्तोस अतिशय, पैन्तीस वाणी गुण सयुक्त चेतन भावी अरिहत देव को ही देव मानूंगा । इस विषय में किसी कवि ने भी कहा है :- ॥ सवैया ॥

हालत न रस ना मुख माही ,

भोग प्रसाद का कैसे लगाऊ । .

नासिका का सुर शाकल भाड़ी

फूँक सुगंध में कैसे सुंघाऊँ ।

कानों में फूँक पाड़ी न सुनें

ताड़ो में तान में कैसे दिखाऊँ ।

अपराध कहे तुम सुनो चतुर नर

ऐसे देवता का मैं कैसे ध्याऊँ ।

बस इस सबैये से भी पट्टी सिद्ध हुआ कि जब जब मूर्ति न बना सकती है और न ही सुंघ सकती है तो फूँकादि का भाग लगाना फूँकादि बढ़ाना अनेक प्रकार के वाजिम्न बजाना व्यर्थ ही है जैसे कि मुर्ते के मुक्त में मात्रण हावना और उस की नासिका का फूँक सुंघाना और कानों के पास अनेक प्रकार के गाने गाना अनेक तपस् के घंटे घड़ताऊँ और वाजिम्न का बजाना व्यर्थ है वैसे ही एक जिमैन्ट्र देव की बनावटी मूर्ति बनाकर उसे भाग लगाना निर्बल कुछ बढ़ाना उस के आंग दूकों का छेर लगाना घंटे घड़ताऊँ बजाना सब व्यर्थ ही है । अने कारों की कानों से बढ़रा कानों से अन्धा पति पाकर उसके आगे १६ प्रकार

का हार शृङ्गार करके उसे दिखानावे, तो देखे कौन ? और मनोरंजक अनेक प्रकार के गीत सुनावे, तो सुने कौन ? क्योंकि पति देव तो अन्धे और बहरे हैं । अन्धे और बहरे पति के आगे शृङ्गार दिखाने वाली और राग गाने वाली स्त्री को लोग देख कर मूर्ख ही कहेंगे । इसी तरह तीर्थंकर की जड़ मूर्ति के आगे मुकुट और घुंघरू आदि पहनकर विभूषित होना और नाचना और राग रंग जड़ मूर्ति के आगे गाना मूर्खता सूचक नहीं तो और क्या है ?

प्रश्न:—क्या पत्थर की गाय से दूध प्राप्ति की पूर्ति हो सकती है ?

उत्तर —नहीं, क्योंकि वह नकली गाय बनावटी है । जब वह घास और अन्न आदि की खुराक नहीं ले सकती, तो वह नकली गाय बिना खुराक के लिए दूध भी नहीं दे सकती, और न ही कोई बुद्धिमान मनुष्य उस नकली बनाई हुई गौ के आगे घास और अन्नादि की खुराक रखता है । अगर कोई पत्थरआदि को बनावटी गौ के आगे घासादि खुराक डाले, तो देखने वाले उस मनुष्य को मूर्ख

ही कहेंगे। इसी तरह नकुली जिनेश्वर देव की बनावटी मूर्ति से भी ज्ञान ध्यान प्राप्त प्राप्ति; यदि शुद्ध रूप दृष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस तरह नकुली गौ के आगे बातादि हाकने वाले मनुष्य का स्वर्ग समझा जाता है उसी तरह नकुली मूर्ति के आगे फल फूल बढ़ाना भी तो अज्ञानता का ही सूचक है।

प्रश्न —प्रतिमा को तो एक कारीगर बनाता है यदि कारीगर द्वारा बसाई गई प्रतिमा पूजनीय हो सकती है तो क्या प्रतिमा के बनाने वाला कारीगर पूजनीय नहीं हो सकता ?

उत्तर —हां, अगर वह कारीगर सत्य, शील सन्तान, भाग निवृत्ति रूप प्रवृत्ति मार्ग को त्याग कर निवृत्ति मार्ग को धारण कर ले, तो वह पूजनीय हो सकता है, क्योंकि वह चेतन है। वह सत्य नियमादि शुद्ध विषय को धारण कर सकता है और मूर्ति जब होने से तब संयमादि गुणों का धारण नहीं कर सकती अतः वह मूर्ति कभी भी पूजनीय नहीं हो सकती। क्योंकि पूजा शुद्ध की

ही होती है। एक पुजारी होता है और एक पूज्य होता है। पुजारी होता है पूजा करने वाला, पूज्य होता है जिस की पूजा की जाए, पूजा करने वाले पुजारी से पूजा कराने वाले पूज्य में गुण विशेष होने चाहिए। पूजा करने वाला पूज्य की इसी लिए पूजा करता है कि पूज्य में पुजारी से गुण अधिक होते हैं। लडके को वही मास्टर विद्या दे सकेगा, जो लडके से अधिक विद्वान होगा। अगर अध्यापक विद्यार्थी से विद्या में कम या बराबर हो, तो भी विद्यार्थी को उस अध्यापक से विद्या प्राप्ति नहीं हो सकती। प्यारे सज्जनों ! कितनी हास्यप्रद और विचारणीय बात है कि मूर्ति रूप पूज्य तो जड़ है अर्थात् ज्ञान, ध्यान विवेक से शून्य है, और उसे पूजने वाला पुजारी मनुष्य विशेष चेतन है, जो ज्ञान, ध्यान, व्रत सयम आदि नियमों का पालन कर सकता है। ऐसा गुणशील मानव उस निर्गुण मूर्ति से क्या प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् मिथ्यात पोषण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

ही करेंगे। इसी तरह नक़्शी मिनेश्वर देव की बनावटी मूर्ति से भी ज्ञान ज्ञान प्राप्त प्राप्ति; यदि कुछ रूप कृष्ण की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस तरह नक़्शी गी के आगे आसाहि डाकने वाले मनुष्य को मूर्त समझा जाता है उसी तरह नक़्शी मूर्ति के आगे कम पूजा चढ़ाना भी तो अज्ञानता का ही सूचक है।

प्रश्न -प्रतिमा को तो एक कारीगर बनाता है यदि कारीगर द्वारा बनाई गई प्रतिमा पूजनीय हो सकती है तो क्या प्रतिमा के बनाने वाला कारीगर पूजनीय नहीं हो सकता ?

उत्तर -हां, अगर वह कारीगर सत्य, शील सन्ताप, माग निवृत्ति रूप प्रवृत्ति मार्ग को त्याग कर निवृत्ति मार्ग का धारण कर ले, तो वह पूजनीय हो सकता है, क्योंकि वह भैरव है। वह सत्य नियमादि गुण विशेष का धारण कर सकता है, और मूर्ति जड़ होने से तब संप्रमादि गुणों का धारण नहीं कर सकती, अतः वह मूर्ति कभी भी पूजनीय नहीं हो सकती। क्योंकि पूजा गुण की

ही होती है। एक पुजारी होता है और एक पूज्य होता है। पुजारी होता है पूजा करने वाला, पूज्य होता है जिस की पूजा की जाए, पूजा करने वाले पुजारी से पूजा कराने वाले पूज्य में गुण विशेष होने चाहिए। पूजा करने वाला पूज्य की इसी लिए पूजा करता है कि पूज्य में पुजारी से गुण अधिक होते हैं। लडके को वही मास्टर विद्या दे सकेगा, जो लडके से अधिक विद्वान होगा। अगर अध्यापक विद्यार्थी से विद्या में कम या बराबर हो, तो भी विद्यार्थी को उस अध्यापक से विद्या प्राप्ति नहीं हो सकती। प्यारे सज्जनों! कितनी हास्यप्रद और विचारणीय बात है कि मूर्ति रूप पूज्य तो जड़ है अर्थात् ज्ञान, ध्यान विवेक से शून्य है, और उसे पूजने वाला पुजारी मनुष्य विशेष चेतन है, जो ज्ञान, ध्यान, व्रत सयम आदि नियमों का पालन कर सकता है। ऐसा गुणशील मानव उस निर्गुण मूर्ति से क्या प्राप्त कर सकता है? अर्थात् मिथ्यात पोषण के नानिष्ठिक मूर्ति पूजा भी नहीं।

प्रश्न :- अजी मूर्ति देखने से ध्यान जम जाता है, इस छिप मूर्ति के दर्शन करने पर आवश्यक क्यों नहीं है ?

उत्तर - प्रिय मित्र ! यह बात भी निर्मूलक और भ्रान्तिजनक ही है, क्योंकि शास्त्रकारों ने ध्यान के विषय में ध्यान, ध्याता और ध्येय ये तीन रूप बतलाए हैं। ध्यान तो मन की एकाग्रता ध्याता ध्यात्मा और ध्येय जिस का ध्यान लगाया जाए (जो ध्यान का ग्राह्य विषय है) ध्याता को जैसा बनना होता है उसे वैसा ही ध्येय बनाना होता है। जैसे किसी मनुष्य को देखी जाना है तो उसे बनना ध्येय देखी ही बनाना होगा, तब ही वह देखी पुरुष सकेगा। यदि ध्येय तो देखी जाने का हो जब के कारमीर की ओर, तो वह देखी कहापि नहीं पुरुष सकता बसि जितने कदम कारमीर की ओर उठाता है उतना ही वह अपने ध्येय रूप देखी से दूर होता या रहा है। इसी तरह जो व्यक्ति तीर्थंकर देव के गुण विशेष अपने में धारण

करना चाहता है, उसे साक्षात् चौन्तीस अतिशय पैन्तीस वाणी गुण संयुक्त अठारह (१८) दूषणों से रहित असली अरिहन्त देव का ही ध्यान करना चाहिए । यह नहीं हो सकता कि गुण तो अरिहन्तों वाले चाहें, और ध्येय रूप पत्थरादि की जड मूर्ति को अपनाए । इस का मतलब तो यही होगा, कि अगर जड मूर्ति को ध्येय बनाएंगे तो ध्याता की बुद्धि भी जड मूर्ति रूप ध्येय के सदृश जड ही हो जाएगी, बस मूर्ति देख कर ध्यान जमने का विचार भी गुलत ही ठहरा ।

प्रश्न.—मूर्ति को तो हम जड ही मानते हैं, किन्तु हम अमने भावों से जड मूर्ति में चेतनभावी तीर्थकरों की स्थापना कर लेते हैं, अतः हमें तीर्थकर भावी गुणों की जड मूर्ति से प्राप्ति हो जाती है । तो फिर भाई साहिब आपके इस विषय में क्या विचार है ?

उत्तर —वाह जी वाह खूब कही ! यह तो पेसा ही हुआ, जैसे किसी स्त्री का पति चल बसा और पति के मृतक शरीर को देख कर उस

प्रश्न -अजी मूर्ति देखने से ध्यान कम जाता है, इस सिंग मूर्ति के दर्शन करने पर मावरणक क्यों नहीं है ?

उत्तर -प्रिय मित्र ! यह बात भी निर्मूल और भ्रान्ति जनक ही है, क्योंकि शास्त्रकारों ने ध्यान के विषय में ध्यान, ध्याता और ध्येय में तीन रूप बतलाए हैं। ध्यान तो मन की एकाग्रता, ध्याता, आत्मा और ध्येय जिस का ध्यान आगवाया जाए (जो ध्यान का ग्राह्य विषय है) ध्याता को जैसा बनना होता है उसे वैसा ही ध्येय अपनाना होता है। जैसे किसी मनुष्य का देहली आना है, तो उसे अपना ध्येय देहली ही बनाना होगा, तब ही वह देहली पहुँच सकेगा। यदि ध्येय तो देहली जान का हो बल से कारमीर की ओर, तो वह देहली कदापि नहीं पहुँच सकता, बल्कि जितना कदम कारमीर की ओर बढ़ता है, उतना ही वह अपने ध्येय रूप देहली से दूर होता जा रहा है। इसी तरह जो व्यक्ति तीर्थंकर देव के गुण विशेष अपने में धारण

जाता है। अगर ध्यानकर्ता का ध्यान अरिहन्तदेव के गुण विशेष में चला जाता है, तो उस समय मूर्ति में ध्यान नहीं होता, और अगर मूर्ति का ध्यान है, तो अरिहन्त देव के गुण विशेष में ध्यान नहीं हो सकता।— (या तो अरिहन्तों का ही ध्यान कर लो, या जड़ मूर्ति का) टट्टी की ओट में शिकार नहीं खेलना चाहिए। ध्यान तो किया जाये जड़ मूर्ति का और गुण प्राप्ति चाहो अरिहन्तों के गुण विशेष की। यह बात कदापि नहीं हो सकती। वस, अब तो आप की समझ में अच्छी तरह ध्यान का मतलब आ गया होगा। अगर इतना स्पष्ट रूप में समझाने पर भी जड़ मूर्ति का पीछा न छोड़ा, तो इस में कारण रूप मिथ्यात्व की प्रवृत्ति ही मानी जाएगी, और भगवान् महावीर ने भी मिथ्यात से ही छुटकारा पाना कठिन बतलाया है, जैसे कि श्री उत्तराध्यायन शास्त्र में कहा है, “सद्भापरम दुल्लहा” अर्थात् सच्चे देव, गुरु धर्म की श्रद्धा का होना ही जीवात्मा को अनादि काल से अति दुर्लभ है, इस के बिना जीव

मित्रीवै शरीर में पति के सजीवपन की कल्पना करके वह भी कहे कि अब मुझ मित्रीवै पति के शरीर में सजीव गति भाव प्राप्त हो गया है तो क्या उस मृतक पति शरीर में सजीवित पति भाव आ जायगा, और पति से हाने वाले गृह काय, और पति सौभाग्य व संतान प्राप्ति हो जायगी ? कदापि नहीं । अगर मृतक पति शरीर में जिन्हे पति की कल्पना करने से जीवित पतिभाव प्राप्त नहीं हो सकता है तो समझा अब मूर्ति में भी अरिहन्त देव के सच्चे भाव की कल्पना करने से वास्तविक अरिहन्त भाव नहीं आ सकता और न ही अरिहन्त देव वाले गुणों की प्राप्ति हो सकती है और जिन अब मूर्ति पूजकों का यह अल्प विश्वास है कि मूर्ति देवों से अरिहन्त में डीक २ क्याम कम आता है यह बात भी मिथ्या है क्योंकि एक समय में दो काम नहीं हो सकते यदि कोई व्यक्ति सन्मुख मूर्ति रख कर अगर उस मूर्ति के हो अंगोपांग और मुकटादि का निरीक्षण करता है तो उस का ध्यान इन्हीं चीजों तक परिमित रह

जाता है। अगर ध्यानकर्ता का ध्यान अरिहन्तदेव के गुण विशेष में चला जाता है, तो उस समय मूर्ति में ध्यान नहीं होता, और अगर मूर्ति का ध्यान है, तो अरिहन्त देव के गुण विशेष में ध्यान नहीं हो सकता।— (या तो

अरिहन्तों का ही ध्यान कर लो, या जड़ मूर्ति का) टट्टी की ओट में शिकार नहीं खेलना चाहिए। ध्यान तो किया जाये जड़ मूर्ति का और गुण प्राप्ति चाहो अरिहन्तों के गुण विशेष की। यह बात कदापि नहीं हो सकती। बस, अब तो आप की समझ में अच्छी तरह ध्यान का मतलब आ गया होगा। अगर इतना स्पष्ट रूप से समझाने पर भी जड़ मूर्ति का पीछा न छोड़ा, तो इस में कारण रूप मिथ्यात्व की प्रबलता ही मानी जाएगी, और भगवान् महावीर ने भी मिथ्यात से ही छुटकारा पाना कठिन बतजाया है, जैसे कि श्री उत्तराध्ययान शास्त्र में कहा है, “सद्भापरम दुल्लभा” अर्थात् सच्चे देव, गुरु धर्म को श्रद्धा का होना ही जीवात्मा को अनादि काल से अति दुर्लभ है, इस के बिना जीव

संसार स्त्री समुद्र में गति जाता चला आ रहा है
 बहुधा ! यदि कल्याण चाहते हो, तो सबसे देव
 गुठ धर्म का अपनाया । इठ छाड़ देना ही तुम्ह
 का कारण है । अगर हट नहीं छोड़ोगे तो गंध के
 तुलसी से पीड़ित एक लड़के बाबा ही हाथ होगा
 एक लड़का केन में दयादा चित्त जगान से अपना
 पाठ याद नहीं करता था । माता ने उसे कहा, कि
 जिस चीज़ का पकड़ ले वह कैसे नहीं आ सकती ।
 पकड़ी हुई चीज़ को छोड़ना नहीं चाहिए, अर्थात्
 (निरूपण पाठ का छोड़ना नहीं चाहिए) । उस
 मूर्ख लड़के ने अगले दिन एक गंधे को पंख पकड़
 ली, बस फिर क्या था ! सम्बन्ध देवता ने दीवली
 की पुछाह पर पुछाह जगानो सुख की । परियाम
 यह हुआ कि लड़का मूर्च्छित होकर मिर पड़ा ।
 पता जगमें पर माता घर पर ठठा ले गई । लड़के
 को दो ठीन महीन के बाद चाराम होने पर पूछा
 'कि तुं ने गंधे को पंख क्यों पकड़ी जिस से यह
 हाथ हुआ । मूर्ख लड़के ने उत्तर दिया 'तुम ने
 ही तां कहा था कि जिस चीज़ को पकड़ ले उसे

छोड़ना नहीं चाहिए।” माता अपने दुर्भाग्य को धिक्कारती हुई सिर पर हाथ मार कर वाली, “अरे मूर्ख ! मैं ने गधे की पूँछ पकड़ने को थोड़ा कहा था मैं ने तो लिए हुए पाठ को याद करने के लिए कहा था” ।

प्यारे सज्जनों ! कल्पित पापाणादि की मूर्ति को अरिहन्त देव मानना और सयम मार्ग से पतित, आवार भ्रष्ट व्यक्ति को गुरु मानना और एक इन्द्रियादि जीवों की हिंसा करके धर्म मानना, ये एक प्रकार से मिथ्यात रूप गधे की पूँछ पकड़ना ही हैं । ससार भ्रमण रूप मिथ्यात के फल को जानते हुए भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्म रूप गधे की पूँछ का न छोड़ना यह बात हठ नहीं तो और क्या है ? साराश यह निकला कि मूर्ति पूजन में मिथ्यात पोषण के अतिरिक्त और कुछ भी गुण विशेष रूप लाभ नहीं है, और मूर्ति पूजकों के मान हुए कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेम चन्द्र सूरि जी भी मन्दिर विषय में लिखते हैं (देखिए योग शास्त्र द्वितीय प्रकाश पृष्ठ ११६ गाथा एक सौ इक्कोसवी

संसार सारी समुद्र में गाते ज्वाला जला आ रहा है
 बहुभो ! यदि कल्याण चाहते हो तो तब से देव
 गुरु धर्म का अपमानना । हठ छाड़ देना ही सुख
 का कारण है । अगर हठ नहीं छोड़ोगे तो गधे के
 तुलतों से पीड़ित एक बड़के बाघा ही हानि होगा
 एक बड़का लाल में कपाड़ा बिछ जमाने से अपना
 पाठ पाद नहीं करता था । माता ने उसे कहा, कि
 जिस चीज़ का पकड़ ले वह कैसे नहीं आ सकती ।
 पकड़ी हुई चीज़ का छोड़ना नहीं चाहिए, अर्थात्
 (लिए हुए पाठ को छोड़ना नहीं चाहिए) ' । उस
 सूँठ लड़के ने अगले दिन एक गधे को पंछ पकड़
 की बल फिर कहा था । सम्बन्ध देवता में शौचों
 की पुछाह पर पुछाह लगाने शुरू की । परिग्राम
 यह हुआ कि लड़का सूँछित होकर गिर पड़ा ।
 पता लगान पर माता घर पर इत्यादि गई । लड़के
 को हाँ तीन महान के बाद आराम होने पर पूछा
 'कि तू ने गधे को पंछ क्यों पकड़ी जिस से यह
 हाजि हुआ ।' सूँठ लड़के ने उत्तर दिया 'तुम ने
 ही तो कहा था कि जिस चीज़ का पकड़ ले उसे

छोड़ना नहीं चाहिए ।” माता अपने दुर्भाग्य को धिक्कारती हुई सिर पर हाथ मार कर बाली, ‘थरे मूर्ख ! मैं ने गधे की पूछ पकड़ने को थोड़ा कहा था मैं ने तो लिप हुण पाठ को याद करने के लिए कहा था” ।

प्यारे सज्जनों ! कल्पित पापाणादि की मूर्ति को अरिहन्त देव मानना और सयम मार्ग से पतित आवार भ्रष्ट व्यक्ति को गुरु मानना और एक इन्द्रियादि जीवों की हिंसा करके धर्म मानना, ये एक प्रकार से मिथ्यात रूप गधे की पूछ पकड़ना ही है । ससार भ्रमण रूप मिथ्यात के फल को जानते हुए भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्म रूप गधे की पूछ का न छोड़ना यह बाल हठ नहीं तो और क्या है ? साराश यह निकला कि मूर्ति पूजन में मिथ्यात पोषण के अतिरिक्त और कुच्छ भी गुण विशेष रूप लाभ नहीं है, और मूर्ति पूजकों के मान हुए कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेम चन्द्र सूरि जी भी मन्दिर विषय में लिखते हैं (देखिए योग शास्त्र द्वितीय प्रकाश पृष्ठ ११६ गाथा एक सौ इक्कोसवी

(१२१ वी) ।

“कंचन यमि सोवामं धर्मं सहस्मो तिय भवततस
को कारिणं जिह्मदरं तउ वि तव संयमा अटिमा
अवेत्त यदि कोट्टं मनुप्य कंचण मणि
आटि का भी घड़ा भारी जिन मन्दिर
वनवा दे, तो भी तप और संयम रूप
फल २ से बहुत अधिक है । सबको
बड़े लोक की बात है कि कंचनयमि आदि के
मन्दिर बनाने की अपेक्षा तप संयम में महान
काम हास पर भी उस महान कामदायक तप
संयम आराधन पर इतना जोर न देते हुए मन्दिर
बनवाने और मङ्ग मूर्तियों के ही पीछे ये लाग पड़े
हुए हैं । इस उपरान्त गाथा से भी मन्दिर का
बनवाना और मूर्ति पूजा का करना कोई
कामदायक निश्चय नही होता ।

प्रश्न -मूर्ति पूजकों का कहना है कि श्री
अमृतगङ्गा सून में अशुभमात्री ने भोगरपाची यज्ञ

की प्रतिमा की पूजा की, और मूर्ति अधिष्ठित उस यक्ष ने आ कर अर्जुन माली की सहायता की। क्या इस से जिन प्रतिमा के पूजने की सिद्धि नहीं होती ?

उत्तर :-विना गुरु धारणा के शास्त्र पढ़ने पर उल्टा ही मतलब निकला करता है। श्री अन्त गड सूत्र से कोई तीर्थंकर की मूर्ति की पूजा की सिद्धि नहीं होती, क्योंकि वह मूर्ति किसी तीर्थंकर की नहीं थी, और न ही अर्जुन माली उस समय जैन था। यक्ष ने जो आकर उस की सहायता की, यह बात इस लिए सम्भव है कि उस यक्ष की आत्मा उस समय देव योनि रूप सत्तार में विद्यमान थी, और उस यक्ष को अपनी मान बढाई की भी आकांक्षा बनी रहती थी। इस लिए उस ने अपनी मान बढाई को कायम रखने के लिए अर्जुन माली की सहायता की, लेकिन यह बात जो अर्जुन माली और मोगर पाणी यक्ष के विषय में है जिनेन्द्र देव की मूर्ति के विषय में नहीं घटती, क्योंकि मोगर पाणी यक्ष तो सत्तार में विद्यमान था, सो अपनी मान बढाई कायम रखने के लिए ऐसा

कर सका किन्तु तीर्थंकर एवं ता मोक्ष में पहुँच गए हैं। जिन की प्रतिमा बना कर पूजा की जाती है व बना नहीं सकते इस लिए उन की मूर्ति का पूजा से किसी प्रकार की सहायता का शुभ प्राप्ति नहीं हो सकती और न ही उन्हें इस पक्ष की तरह अपने मान सम्मान का स्थित रखने की आवश्यकता है। अर्जुन माझी की पक्ष द्वारा सहायता का हाना इस में मूर्ति कारण भूत नहीं है बल्कि पक्ष का संसार में अस्तित्व भाव रूप होना और उसे अपनी मान बढ़ाई की रक्षा का सम्मान हाना ही कारण भूत है। जिन तीर्थंकर देवों की मूर्ति पूजा की जाती है न ही वह संसार में हैं, जो मूर्ति पूजकों की सहायता कर और न ही उन्हें अपने मान सम्मान की कसूरत है। बस इस कैव ने भी यही सिद्ध हुआ कि तीर्थंकरों की मूर्ति बना कर पूजा निष्पातपापस के सिवा कुछ भी लाभदायक नहीं है।

आ एण्डी लोग बार २ छाता सूत्र का प्रमाण दे कर यह पुकारत है कि श्रीवही ने जिन पूजा की है इस में भी मूर्ति पूजा जन

शास्त्र द्वारा सिद्ध होती है। यह भी उन लोगों का एक भ्रम ही है। प्रथमतः यह बात है कि उस समय जिस समय का ये प्रमाण देते हैं, द्रौपदी जैन धर्मानुयायी ही नहीं थी, क्योंकि उस के विवाह के समय पर उस के पिता के घर पर ६ प्रकार का आहार बना। यह बात शास्त्र सिद्ध है। वह ६ (छ) प्रकार का आहार इस प्रकार है - अन्न पान, खादिस, स्वादिस, सुग (शराव) और मांस। जिस के घर में मांस और शराव आदि आहार बनाया जाए, वह व्यक्ति कदापि जैन धर्मानुयायी नहीं हो सकता, इस में सिद्ध हुआ कि उस समय द्रौपदी जैन धर्मानुयायी नहीं थी, और जो जिनार्चन द्रौपदी ने किया है शास्त्र में यह शब्द आया है इस का मतलब जिन अर्थात् तीर्थंकर की मूर्ति में नहीं है। यहाँ जिन शब्द का प्रयोग कामदेव का मूर्ति से सम्बन्ध रखता है। शादी के अवसर पर प्रायः करके ससारी लोग अज्ञानता के कारण कामदेव आदि की मूर्ति की पूजा किया करते हैं। यद्यपि यह बात भी कुछ विशेष महत्त्व

मही रखती है किन्तु ससारी जीवों को अनेक प्रकारके भ्रम बसे रहते हैं, इस कारण से सांसारिक सुख के लिए अनेक प्रकार की चेष्टाएँ किया करते हैं। श्री म्यानांग सूत्र में तीन प्रकार के जिन माने हैं : (१) अवधि हानी जिन (२) समपर्यव हानी जिन (३) कैवल्य हानी जिन । ये शास्त्र द्वारा कथित तीन प्रकारके जिन कैवल्य पाठक गणों को जिन पर्याय बाधो बोध के लिए जिन गये हैं । और श्री हम चन्द्र आचार्य कृत श्री हेम नाम माता में ४ प्रकार के जिन माने हैं रसोक्त :-
अरिहन्तापिब्रजो येव जिना सामान्य कैवली,
कम्बुर्पोपि जिमीचय, जिना मारायमाहुरि ।
श्री हेम चन्द्र जी द्वारा बतलाए गए चार प्रकार के जिन इस प्रकार हैं -

(१) अरिहन्त (२) कैवली (३) कामदेव और नाथयम । यही पर कामदेव की प्रतिमा से हा जिन शास्त्र का मतलब है । इस में यह बात स्पष्ट रूप से लिख हो गई कि कामदेव की प्रतिमा का ही शीपरी ने विवाद के अवसर पर अचन

किया था ।

इस का समर्थन विजयगच्छाचार्य
श्री गुण सागरसूरिने स्वरचित ढाल-
सागर खंड ६ ढाल ११६ के आठवें
दोहे में (रचनाकाल) वि. सं. १६७२)
किया है, देखिये :—

‘करी पूजा कामदेवनी, भाखे द्रुपदी नार ।
देव दया करी मुझन, भलो देजो भरथार ॥’
द्रौपदी जी ने तो विवाह के समय सासारिक
कामनाओं को लिए हुए कामदेव की प्रतिमा का
अर्चन किया था, क्या पुजेरे लोग भी बनावटी
तीर्थकर मूर्ति बना कर सासारिक सुखों के लिए
या विवाहादि कार्यों के लिए ही पूजते हैं ? यदि
ऐसा ही है, तब तो यह लोग बड़ा अन्याय करते हैं,
कि जा भोगपरित्यागी तीर्थकर देव से भोग रूप फल
की प्राप्ति चाहते हैं । यदि ऐसा नहीं है, तो द्रौपदी

जी का उदाहरण देना सर्वथा मिथ्या है । इस द्रौपदी जी ने जिन अरिहन्त की पूजा की, ऐसा बार २ रहन करना एक अनन्तम जनता को थोका देना है क्योंकि द्रौपदी जी के पूजाधिकार में अरिहन्त शब्द आया ही नहीं है । ऐसे संशयारमक कथन से पुनरे लोगों के मन में पड़कर कोई भी बुद्धिमान सच्चे मार्ग से भ्रष्ट नहीं हो सकता ।

प्रश्न :- जैन लोग अन्ध देवी देवताओं की मूर्तियों व मड़ी मसान्नी आदि को क्यों मान्य देकते हैं ?

उत्तर :- संसार खाते किन्तु वास्तव में उन देवी देवताओं की मान्यता पूजा को मिथ्यात ही समझते हैं (बुद्धिमान कर्म विरवासी जैन तो मड़ी मसान्नी आदि की पूजा करते ही नहीं हैं) इसी प्रकार क्या आप लोग भी जिन प्रतिमा की पूजा और मान्यता का मिथ्यात ही समझते हैं ? अगर ऐसा है तो आप का और हमारा कोई विवाद नहीं है । कह शक्ति कि हम भी उसे मिथ्यात

ही समझते हैं ।

मूर्ति पूजक का उत्तर अजी हम तीर्थकर भगवान् की मूर्ति की पूजा और मान्यता को कैसे मिथ्यात कह सकते हैं, वह तो हमें मोक्ष फल के देने वाली है ।

मूर्ति निषेधक का उत्तर : बस भाई साहिब । आप का हमारा यही तो विरोध है, कि हम मडो मसानी की मान्यता को जिस तरह मिथ्यात समझते हैं, उसी तरह जिनदेव की प्रतिमा के पूजनार्चन को भी मिथ्यात ही समझते हैं । आप उसे मोक्ष फल दाता समझते हैं ।

प्रश्न -क्या जैन शास्त्रों में तीर्थकर भगवान् की मूर्ति पूजा का विधान नहीं है ?

उत्तर :-नहीं ।

प्रश्न :-तीर्थकरों की बनावटी मूर्ति का पूजा विधान सूत्रों में क्यों नहीं ?

उत्तर :-क्यों कि यह मिथ्यात है इस लिए सूत्रों में इस का विधान नहीं है ! दण्डो आत्मा राम जी ने भी 'अज्ञान तिमिर भास्कर' नाम

जी का उदाहरण देना सन्धा मिथ्या है । वस द्रौपदी जी ने जिन अरिहन्त की पूजा की, ऐसा बार २ रटन करना एक अनजान जमता की धांका देना है क्योंकि द्रौपदी जी के पूजाधिकार में अरिहन्त शब्द आया ही नहीं है । ऐसे संघर्षात्मक कथन से तुमारे लोगों के भ्रम में पड़कर कोई भी बुद्धिमान सचे मार्ग से भट नहीं हो सकता ।

प्रश्न -जैन लोग अपने देवी देवताओं की मूर्तियों व मड़ी मस्तानी आदि को क्यों भाषा सकते हैं ?

उत्तर :-संसार वाले किन्तु वास्तव में उन देवी देवताओं की मान्यता पूजा को मिथ्यात ही समझते हैं (बुद्धिमान कर्म बिरवासी जैन तो मड़ी मस्तानी आदि की पूजा करते ही नहीं हैं) इसी प्रकार क्या आप लोग भी जिन प्रतिमा की पूजा और मान्यता का मिथ्यात ही समझते हैं ? अगर ऐसा है तो आप का और हमारा कोई विवाद नहीं है । कह दोजिए कि हम भी उसे मिथ्यात

उपरोक्त लेखों से स्पष्टतया सिद्ध हो गया, कि तीर्थंकर मूर्ति पूजा प्रमाणिक ३२ शाखों में नहीं है। मूर्ति पूजकों का ससार को धोका देने के लिए जो यह कहना है, 'कि मूर्ति पूजा जैन शाखोक्त है, और प्रमाणिक जैन शाखों में ठाम २ पर मूर्ति का कथन है, उन का यह कहना सर्वथा मिथ्या है या "ता मूर्ति पूजा शाखोक्त है" ऐसा कहने वालों का कहना मिथ्या है या "मूर्ति पूजा विधान शाख में नहीं है" ऐसा कहने वाले दण्डी बल्लभ विजय जी के मान्य गुरु दण्डी आत्मा राम जी का कहना मिथ्या है। दोनों में से एक बात तो है ही। बस ! शाखों में जिनदेव की मूर्ति पूजा का कथन है, इस का रटन करना व्यर्थ और सर्वथा निर्मूल है। शोक तो इन मूर्ति पूजक जैनों पर इस बात का है, कि प्रमाणिक जैन शाखों में तीर्थंकर मूर्ति पूजा का विधान न होने पर भी, फिर भी अपनी हठ की न छोड़ कर मूर्ति के पीछे पड़े रहना।

प्रश्न -जब मूर्ति घड़कर कारीगर के घर में तय्यार हो जाती है, तो क्या उसे मूर्ति पूजक माथा

बाकी पुस्तक के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ २९ और ४७ पर लिखा है “कि मूर्ति पूजा विद्यामूल में नहीं है, किन्तु स्थी रूप लोगों में विर काय से जाता आता है। इसी प्रकार भीमज्ञानप्रशिक्षिका के पृष्ठ ४६ पर लिखा है, जिस का भाव इस प्रकार है कि दूढ़ीय लोग मूल सुत्रों को ही मानना स्वीकार करते हैं। भाष्य, चूर्णी, निर्युक्ति, टीकादि को नहीं मानते यदि मान लेंगे, तो मूर्ति पूजा को नहीं मानना, और मूढ़ का घाँघना मिश्रणों में भूटा हो जाय।” इन शब्दों से भी साफ़ यही भाव निकलता है कि प्रमादिक ३२ जैन शास्त्रों से तीर्थंकर मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं है और हाथ में सूक्ष्मपति रखना भी इसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता और अज्ञान तिमिर भास्कर द्वितीय खण्ड के पृष्ठ १३० पर भी ऐसा ही लिखा है। इन

शास्त्र विरुद्ध बात है, कि मोक्षात्माओं के संसार में सच्चे जैन शास्त्रानुसार न आने पर भी फिर उन्हें संसार में आह्वान के मन्त्र पढ़ कर बुलाने की चेष्टा करना ।

प्रश्न :—क्या मूर्तिपूजक भी मोक्षात्माओं का संसार में वापिस आना नहीं मानते ?

उत्तर :—हाँ, उन का भी यही श्रद्धान है, “कि मोक्षात्माएँ इस संसार में नहीं आतीं” ।

प्रश्न :—जब मोक्षात्माएँ उन के श्रद्धान के अनुसार भी इस संसार में वापिस नहीं आती हैं, तो उन्हें बुलाने की चेष्टा क्यों की जाती है ?

उत्तर :—इस का कारण है :—हठ और अज्ञान मिथ्यात्व, मोहनीय कर्म के उदय की प्रबलता । जब मोक्षात्माएँ जैन सिद्धान्तानुसार संसार में वापिस नहीं आती हैं, तो मूर्ति में भी तीर्थंकर रूप मोक्षात्माओं का सद्भाव स्थापित नहीं हो सकता, और वह जड़ मूर्ति जड़ भाव में ही रहेगी,

और, न ही वह निर्गुण जड़ मूर्ति किसी भी अवस्था में पूजनीय हो सकती है । एक बड़ा भारी

केकडे हैं या नहीं ?

उत्तर —नहीं ।

प्रश्न —क्यों नहीं ?

उत्तर —मूर्ति पूजकों का कहना है कि अभी वह मूर्ति अशुद्ध और गुण सम्पन्न नहीं है ।

प्रश्न —अभी ! उस में किस बात को स्पृष्टता है ! अथवा नाक कान मुख हाथ और पाँवों आदि ता उस मूर्ति के अंग प्रत्येक सब कुछ बन ही चुके हैं । अब इसे म पूजने का क्या कारण है ?

उत्तर —उस में अभी प्राण प्रतिष्ठा स्थापन नहीं की गई है ।

प्रश्न —अभी प्राण प्रतिष्ठा क्या चीज है ? हम तो नहीं जानते हैं ।

उत्तर :—प्राण प्रतिष्ठा का मतलब है उस अड़ प्रतिमा में आहुत के मन्त्रों द्वारा मोक्ष प्राप्त तीर्थंकरों को बुला कर उस मूर्ति में उन्हें स्थापन करना ।

प्रश्न —क्या मोक्षात्माओं का इस संसार में वापिस आना जैन शास्त्र मानता है ?

उत्तर :—नहीं । यही तो अयोध कल्पित और

उन्हें बुलाकर मूर्ति में स्थापित करने की चेष्टा करते हैं ।

प्रश्न :-मूर्ति पूजकों का यह भी विश्वास है कि पण्डित जाग या कोई पढा लिखा भिक्षु (साधु) शुद्ध द्वारा घड कर तय्यार की गई मूर्ति को मन्त्रों द्वारा शुद्ध कर लेते हैं, तो क्या वह शुद्ध हो जाती है ?

उत्तर :-नहीं । जिस तरह कोई मन्त्र पढकर कोयले को बार २ पानी में डाल कर शुद्ध करना चाहे, तो कोयला उस मन्त्र के प्रभाव से, और पानी के स्पर्श से कालिमा के दोष से विमुक्त नहीं हो सकता । अगर मन्त्र पढकर कोयला पानी में डालने से कालिमा के दोष से विमुक्त हो जाए, तो समझो कि मन्त्रों द्वारा जड मूर्ति का जड दोष भी दूर हो सकता है । यदि कल्पना करके मान लें कि मूर्ति पूजकों के विश्वासानुसार वह मूर्ति किसी पण्डित आदि के द्वारा मन्त्र पढने में शुद्ध हो सकती है, तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि मूर्ति को शुद्ध करने वाला बडा है या शुद्ध होने वाली मूर्ति ?

दाय माहात्माओं का संसार में आहुन करने में यह भी आता है कि 'जो आत्मान जन्म मरण से ग्रहित होकर सुख को प्राप्त कर चुकी हैं मङ्ग मूर्ति के भक्त फिर उन पवित्रात्माओं का अङ्ग मूर्ति रूप काराग्रह में बन्ध करना चाहते हैं। धन्य हैं ऐसे भक्तों को ! यदि वास्तव में मूर्तिपूजकों के विचारानुसार आहुन के मन्त्रों द्वारा मातृ प्राप्ति रूप तीर्थंकर भगवान् आ जाते हैं तो उन का सिद्धान्त गलत पाया जाता है, क्योंकि, मूर्तिपूजकों का सिद्धान्त भी मोहात्माओं का संसार में आगमन नहीं मानता है ।

प्रश्न - यदि इन के सिद्धान्तानुसार मोहात्माएँ संसार में नहीं आ सकती, तो फिर तो वह अङ्ग मूर्ति बैसी का बैसी ही रह जाएगी, फिर उस अङ्ग मूर्ति की उपासना से क्या लाभ है और उन मोहात्माओं का आहुन करने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर - यही तो बात विचारने की है कि मोहात्माओं के संसार में न आने पर भी फिर भी

कि मूर्ति की द्रव्य पूजा में ६ (छः) काया के जीवों की विराधना होती है ।

प्रश्न :-अगर मूर्ति पूजा करने से ६ काया के जीवों की विराधना होती है, तो क्या भगवान् की पूजा करने से पुण्य रूप लाभ नहीं हो सकता ? जिस तरह कूप खुदाने में हिंसा होने पर भी कुण के पानी से पानी पीने वाले जीवों की प्यास निवृत्ति होने से पुण्य का लाभ हो सकता है ।

उत्तर :-कदापि नहीं, क्योंकि कुण के पानी से तो अनेक जीवों की तृप्ता की निवृत्ति हुई, और वे जीव सुख को प्राप्त हुए, मूर्ति पूजा में क्या लाभ हुआ ? किस जीव के किस दुःख की निवृत्ति हुई ? मूर्ति पूजा में दुःख निवृत्ति तो क्या, किन्तु छ काया के जीवों की हिंसा तो अवश्य हुई, इस लिए कूप का दृष्टान्त मूर्ति पूजा विषय में नहीं घट सकती और न ही मूर्ति पूजा में हिंसा होने से कर्म बन्ध के सिवा पुण्य बन्ध हो सकता है ।

प्रश्न -मूर्ति पूजकों का यह भी कहना है कि जिस तरह एक नारी के चित्र को देख कर विकार

निषेध यह है कि अशुद्ध को शुद्ध करने वाला ही पूजनीय और बड़ा होता है। यही तो इस का उल्टा ही भाव देना जाता है। शुद्ध करने वाला पूजा करता है और शुद्ध होने वाली मूर्ति को पूजा की जाती है।

प्रश्न कर्ता का उत्तर —सच्ची यह तो बड़ा ही विचित्रविषय है कि शुद्ध होने वाला तो पूज्य, और शुद्ध करने वाला पुजारी।

मूर्ति निषेधक का उत्तर —हो २ मूर्ति पूजा में यही तो बड़ी भारी बाधापत्ति आती है इसी लिए तो हम शुद्ध प्राचीन स्थानक वाली जैन मूर्त पूजा नहीं करते हैं और न ही बुद्धिमान सत्सार का ऐसा करना चाहिये।

प्रश्न —क्या मूर्ति पूजा में हिंसा बोध भी जगता है ?

उत्तर —हाँ २ क्यों नहीं। अवरय ही छः (६) काया के जीवों की विराधना रूप हिंसा जगती है। इस बात को तो कण्ठी आत्मा राम जी ने भी “जैनतत्त्वावली” के पृष्ठ २२७ पर स्वीकार किया

कि मूर्ति की द्रव्य पूजा में ६ (छः) काया के जीवों की विराधना होती है ।

प्रश्न :-अगर मूर्ति पूजा करने से ६ काया के जीवों की विराधना होती है, तो क्या भगवान् की पूजा करने से पुण्य रूप लाभ नहीं हो सकता ? जिस तरह कूप खुदान में हिंसा होने पर भी कूप के पानी से पानी पीने वाले जीवों की प्यास निवृत्ति होने से पुण्य का लाभ हो सकता है ।

उत्तर :-कदापि नहीं, क्योंकि कूप के पानी से तो अनेक जीवों की तृप्ता की निवृत्ति हुई, और वे जीव सुख को प्राप्त हुए, मूर्ति पूजा से क्या लाभ हुआ ? किस जीव के किस दुःख की निवृत्ति हुई ? मूर्ति पूजा में दुःख निवृत्ति तो क्या, किन्तु छ काया के जीवों की हिंसा तो अवश्य हुई, इस लिए कूप का दृष्टान्त मूर्ति पूजा विषय में नहीं घट सकती और न ही मूर्ति पूजा में हिंसा होने से कर्म बन्ध के सिवा पुण्य बन्ध हो सकता है ।

प्रश्न -मूर्ति पूजकों का यह भी कहना है कि जिस तरह एक नारी के चित्र को देख कर विकार

पेड़ा हो सकता है उसी तरह एक बीतराग देव की दस कर वैराग्य भी पेड़ा हो सकता है और वे मूर्ति पूजक दार्शनिकांतिक सुन अध्ययन आठवें की ११ वीं गाथा के उल्लेख का बार २ उदाहरण दिया करते हैं। यह बल्लेख यह है -

चित्त भित्त न निम्नराज

इस उल्लेख का अर्थ है कि 'भीत चित्तों का अवलोकन करे।' भीत चित्त यह मैं नागों के चित्त का कोई उल्लेख नहीं है। यही तो भीत के चित्त मात्र देखने का निवेद्य किया गया है। भीत चित्तशब्द में आ. २ बीजों भीत पर चित्रित की गई हैं, चाहे वह मनुष्य पशु, ताता मैना बैल, बूटा, फल, फूल आदि कोई भी चित्र क्यों न हो भीत चित्त शब्द में इन सब का समावेश हो जाता है। तो फिर उन भीत चित्तों के अवलोकन करने का निवेद्य शास्त्रकारों ने क्यों किया है ?

उत्तर -भीत चित्त अवलोकन का निवेद्य इस लिए किया गया है कि उन चित्तों के अवलोकन करने से तात्पर्य के ज्ञान ध्यान आदि क्रियाओं में

विघ्न पड़ेगा, क्योंकि साधु का काम है ज्ञान, ध्यान, तप, संयम आदि क्रियाओं में लगे रहना। नुमायशी भीत चित्रों के अवलोकन में लगे रहने से स्वाध्यायादि के समय का उन चित्रों के अवलोकन करने से दुरुपयोग होगा, और समय का दुरुपयोग करने से ज्ञान, ध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

प्रश्न :—अजी क्या भीत चित्र अवलोकन निषेध करने का कारण यह नहीं हो सकता, कि उन चित्रों की देखने से विकार पैदा होता है।

उत्तर :—नहीं।

प्रश्न :—क्यों नहीं ?

उत्तर :—इस का उत्तर स्पष्ट ही है, किन्तु फिर भी मैं आप को इस का स्पष्टीकरण करके समझा देता हूँ। भीत चित्रित गुलाब के फूल को देख कर देखने वाले के मन में उसे सूघने का विकार कभी भी पैदा नहीं हो सकता। इसी तरह चित्रित आम को देख कर भी उस आम को चूमने का भावरूप विकार पैदा नहीं हो सकता, और भीत ऊपर चित्रित की गई रेल को देख कर उस

मैं सवार होम का भाव पैदा नहीं हो सकता। जिस तरह हम चीकों का देख कर इन चीकों से सम्बंध रखने वाले भाव का विकार पैदा नहीं हो सकता उसी तरह जब प्रतिमा को देख कर वैराग्य भाव भी पैदा नहीं हो सकता। द्वावैकाग्रिक सूत्रकी भाषा के उपरोक्त उक्तैव्य से केवल नारी चित्र अवलोकन करने का निषेध सिद्ध नहीं है क्योंकि उपरोक्त श्लोक में तो चित्र मात्र का निषेध किया गया है। कावित की विषय का उल्लंघन तो यह है : 'नारि का सुषर्वाक्षिप' सुषर्वाक्षित अर्थात्। नृ गार संयुक्त को का अवलोकन साधु न करे। यही चित्रित नारी चित्र से मतभेद नहीं है, यही तो वास्तविक नारी से अभिप्राय है। जिन का यह कहना है कि नारी का चित्र देखने से विकार पैदा होता है, तो उन का वास्तविक नारी का देख कर न मातृम क्या हास होता होगा। फिर तो घरों में जाना स्त्रियों से मात्रावधि केना व्याख्यामादि के बीच में स्त्रियों के गीत नाचन कराना और धाप उन्हें बैठे २ सुनना इत्यादि सब बातें छाड़नी

पढेंगी, किन्तु ऐसा करते हुए हम उन्हें नहीं देखते है, यह तो वही बात हुई, “खुद मीया फसीयत, औरों को नसीयत” आप ता स्वयं दो २ घंटे अपने स्थान में स्त्रियों को लिए हुए बैठे रहना, और कहना यह कि नारी चित्र से विकार पैदा होता है। क्या जब स्त्रियों के बीच बैठते हैं, तो आखें बन्द कर ली जाती है ? अगर ऐसा नहीं, तो कल्पित नारी चित्र से क्या हो सकता है ? यह तो वही बात हुई “पण्डित वैद्य मशालची, तीनों चतुर कहाए,

औरों को दे चाँदना, आद अघरे जाए”

प्रश्न :-क्या धर्मी पुरुषों को मूर्ति पूजा करने का कहीं निषेध किया है ?

उत्तर :-हा, क्यों नहीं, टण्डी अमर विजय जो कृत “दूण्डक हृदय नेत्रांजन” नाम की पुस्तक में पृष्ठ १५८ पर बतलाया है

अगर साधु मूर्ति पूजा करे, तो साधु-व्रत से भ्रष्ट हो कर, कर्म बन्ध करके अनन्त संसार भ्रमण करे”

इस लेख से साजु सिद्ध हो गया कि मूर्ति पूजा से कर्म बंध होकर अनन्त संसार भ्रमण करना पड़ना है ।

शंका -यही तो साधु के लिए मूर्ति पूजा का निषेध किया है गृहस्थ के लिए तो नहीं ।

शंका का समाधान -अगर मूर्ति पूजा मोक्ष का एक एक बाकी शुभ क्रिया है तो उसे करने का साधु के लिए निषेध क्यों किया है ? एक गृहस्थ के लिए अगर ब्रह्मचर्य पाकना उचित है, तो क्या वह साधु के लिए उचित नहीं ? इसी तरह अगर किसी गृहस्थ का मूर्ति पूजा से मोक्ष का की प्राप्ति होती है तो क्या मूर्ति पूजा साधु मोक्ष नहीं जाना चाहिये जो उन के लिए मूर्तिपूजा का निषेध किया गया है । अगर मूर्ति पूजा से एक साधु अनन्त संसार बन्ध सकता है तो क्या गृहस्थी नहीं कर सकता ! क्या वह मूर्ति पूजा करके संसार में अनन्त भ्रमण करना गृहस्थों के ही हिस्से में आया है ? जो विष साधु का मार सकता है, वह गृहस्थी को भी मार सकता है ।

इसी तरह जो मूर्तिपूजा एक साधु को अनन्त ससार में भ्रमण करा सकती है, तो वह गृहस्थी को भी करा सकती है। वस दण्डीश्वरविजय जी के इस लेख से स्पष्ट हो गया, कि मूर्ति पूजा अनन्त ससार भ्रमण कराने वाली है। प्यारे सज्जनों! ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो मूर्ति पूजा करके अनन्त ससार भ्रमण की चेष्टा करेगा।

मूर्ति पूजक का उत्तर '—प्रिय मित्र ! आप के द्वारा शास्त्रीय सप्रमाण मूर्ति पूजा निषेधक प्रबल युक्तियां और प्रश्नोत्तरों को पूर्णतया समझ कर मैं आज से ही जड़ मूर्ति पूजा रूप मिथ्या सेवन का परित्याग करता हूं, क्योंकि यद अनन्त ससार भ्रमणात्मक मिथ्यात्व है।



२ पुजेरे दण्डियों द्वारा माना हुआ जड़ मूर्ति पूजा में अनन्त व्रत रूप तप फल ॥

प्रश्न :—क्या जिनादि मन्दिर कोई बुरी
चीज है ?

उत्तर :—हाँ क्यों नहीं जिनादि मन्दिर के
कारण १ (ख) काया के जीवों की हिंसा का महा
आरम्भ समाप्त होता है, अतः जिन मन्दिर एक
निषेध वस्तु है ।

प्रश्न :—इस विषय में क्या आप के पास कोई
प्रमाण भी है कि जिनादि मन्दिर निषेध वस्तु है ।

उत्तर :—हाँ जीजिए । 'श्रीमत्तत्त्वादर्श' पृष्ठ
३०३ पर दण्डी आत्मा राम जी ने स्वयं ही लिखा
है, कि जहाँ जिन मन्दिर की छाया पड़े और
जहाँ दण्डिन्त (मूर्ति) की दृष्टि पड़े वहाँ न बने
अर्थात् जिन मन्दिर की मूर्ति का मुँह होवे, वस्तु के

सामने न बसे" इस लेख से स्पष्टतया सिद्ध हो गया, कि जिन मन्दिर एक निषेध वस्तु है। जिस के शिखर की छाया मात्र भी दुःखदायी है, वह वस्तु ग्रहण करने योग्य कैसे हो सकती है ? उस का तो छोड़ना ही सुख कर है।

प्यारे सज्जनों ! उधर तो दण्डी आत्मा राम जी मन्दिर के शिखर की छाया मात्र का पढ़ना भी दुःखदायी बतला रहे हैं, और इधर "जैन तत्त्वादर्श" के पृष्ठ २२८ पर यह कहते हैं :

“कि जिन मन्दिर में जाने का भाव पैदा होने मात्र से एक व्रत का फल होता है। जाने के लिए उठे, तो दो व्रत का, चलने के लिए उद्यम करे, तो तेले का, चल पड़े तो चौले का, थोड़ा सा मार्ग तह करे, तो पंचौले का, आधा मार्ग तह करे तो १५ दिन का

मूर्ति को देखे तो एक महीने का, जिन भुवन में प्रवेश करे तो ६ महीने का, जिन मन्दिर के दरवाजे पर स्थित होवे, तो एक वर्ष के तप व्रत का फल होता है, जिनराज (प्रतिमा) की प्रदक्षिणा देने से (१००) वर्ष के तप का फल, पूजा करे, तो हजार वर्ष का, स्तुति करे तो अनन्त गुणा फल होता है । जिन मन्दिर पूजे तो पहिले फल से भी सौ गुणा, क्षीपे तो हजार गुणा, फूल चढ़ावे सो लाख गुणा, गीत वाजिन्त्र पूजा करे, तो अनन्त गुणा फल होता है ।”

प्रिय बन्धुओ ! कितनी हास्यप्रद और अज्ञानता सूचक बात है, कि मनादि में सकल्प मात्र होने से एक व्रत फल, और इस प्रकार बढ़ते २ इन्हीं बाह्य क्रियाउम्बरों में अनन्त व्रत फल । अगर ऐसा ही है, तो उन्हें साधु बनने की क्या जरूरत है और ब्रह्मचर्य, व्रतादि का पालन करना और तपस्या करने की भी कोई आवश्यकता बाकी नहीं रह जाती है । फिर मुगड मुण्डाकर घर २ के टुकड़े मागने की भी क्या जरूरत है ! वस फिर तो उन के कथनानुसार आत्मकल्याणार्थ उपरोक्त क्रियाओं का फल ही काफी है । अगर ये क्रियाएं मोक्ष देने में पर्याप्त नहीं हैं, तो ऐसे २ मनकल्पित प्रलोभन देकर भोलो जनता को सन्मार्ग से भ्रष्ट करके जड मूर्ति पूजा के भ्रम में डालने के सिवा और क्या है ? इन्हीं मूर्तिपूजकों के “वर्मोपदेश” नामक ग्रंथ में और भी मन कल्पित ऐसा ही कहा है, गाथा :-

“संयपम्म जणे पुन्न, सहस्सच विलेवणे सय
सहस्सीया माला अणंता गीय बाइय” ।

इस गाथा में बतसाया है -

“कि प्रतिमा को निर्मल जल से स्नान करावे, तो सौ व्रत का फल होवे ।
चन्दन, केसर, कपूर, कस्तूरी, धगर, तगर आदि इन वस्तुओं को गुलाब जल में घिसा कर भगवन्त (प्रतिमा) की नवांगी पूजा करे, तो हजार वर्ष का पंच वर्ष की माता पहरावे, तथा चमेली, रायचेली, चपा मोगरा, मधकुन्द, गुलाब, मरुआ आदि अनेक प्रकार के फूलों का ढेर लगावे, तो लाख व्रत कर, गीत, गायन, छ (६) राग छत्तीस (३६) रागिनी गावे, और दोल

नक्कारा, ताल, मृदंग, वीणा, तम्बूरा, सारंगी आदि अठतालीस (४८) प्रकार के वाजिंत्र बजावे, और नाटकादि नाचना, कूदना मूर्त्ति के आगे करे, तो अनन्त व्रत का फल होता है । ”

क्या ही सस्ता सौदा है ! जब नाचने, कूदने आदि में पुजेरे दण्डियों के धर्म ग्रन्थ अनन्त फल बतलाते हैं, तो नृत्य कारकों को तो न मालूम इन पुजेरे दण्डियों के कथनानुसार कितने अनन्तानन्त व्रतों का फल होता होगा ! अगर नाचने, कूदने और ढोल वाजिंत्र आदि बजाने से अनन्तानन्त व्रत फल की प्राप्ति होती है, तो साधु व्रतादि सर्वाक्रियाओं के धारण करने की क्या जरूरत है ? तो फिर नाचना, कूदना ही शुरू क्यों न कर दिया जाए ! लेकिन ये सब बातें कपोलकल्पित और मिथ्या ही हैं, अतः ये बातें विश्वास करने योग्य नहीं हैं । नाचने, कूदने में अनन्तानन्त तप फल

बतवाना मोक्ष साधक आत्माओं को तप सप, संयम से वंचित रखना है क्योंकि जब इन क्रियाओं में अनन्तानन्त तप रूप फल भोले जीवों को होता हुआ माहूम होगा तो वे तप नियमादि आराधन करके अपनी काया को क्यों दण्डित करेंगे ! नहीं नहीं माछ साधक प्रियात्माओं ! इन क्रियाओं के अपमाने से न अनन्त ब्रत रूप फल की प्राप्ति होती है और न ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है । मिठमी भी साधु रूप साधवीप भम्पात्माप मोक्ष का प्रात हुई हैं वे तप संयम आदि कठिन क्रियाओं के आराधन करने से ही हुई हैं ।

प्रश्न —सम्यक् दर्शन कैसे कहते हैं ।

उत्तर—सम्यक् दर्शन बस सचे अज्ञान को कहते हैं, जो वस्तु स्वरूप के वास्तविक भाव को छिप हुए हो, जैसे कि बीन्तीस अतिशय पैन्तीस बानी गुप्त संयुक्त बैतनभावी अगिहन्त देव में ही देव भाव मानना अर्थात् किसी जड़ सृष्टि रूप

गुण रहित पापाणादि आकृति विशेष में अरिहन्त देव रूप देव भाव की श्रद्धा न करना । जर, जोरू, जमीन के त्यागी और एक इन्द्रिय से लेकर पच इन्द्रिय प्रयन्त ६ (छ) काया के जीवों की रक्षा करने वाले, अपने निमित्त किया गया आहार पानी आदि न लेने वाले, श्री तीर्थंकर भगवान् के निमित्त भगवान् कल्पित जड मूर्ति पर फल फुलादि चढ़ाने का उपदेश न देने वाले, गृहस्थों से मुट्ठी चापी न कराने वाले और अपना भण्डोपगर्ण अर्थात् अपना सामान गृहस्थों से न उठवाने वाले, स्वात्मावलम्बी सच्चे त्यागी गुरुओं को ही गुरु मानना । पृथ्वी आदि ६ (छः) काया की हिंसा में पाप मानना और पट काया के जीवों की रक्षा में धर्म मानना, कुदेव, कुगुरु, कुधर्म में आत्मकल्याण का विश्वास न करना, और तत्त्वों के अर्थ में ठीक २ विश्वास का रखना ही सम्यक् दर्शन है । तत्त्वार्थ सूत्र में भी सम्यक् दर्शन के विषय में ऐसा ही कहा है । सूत्र यथा :-

“तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यक् दर्शन”

अर्थात् तत्त्वों के ठीक २ अर्थ भाव में पदार्थ
बिरास का रखना ही सम्यक् दर्शन है ।

प्रश्न —बुनिया में भगवान् ने किस वस्तु का
मिशनर अति दुष्प्रमाण करमाया है ?

उत्तर—भगवान् ने सच्ची सद्भा का प्राप्ति होना
ही अति दुष्प्राप्य करमाया है ।

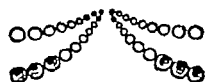
प्रश्न —कौन से सूत्र में करमाया है ?

उत्तर :—श्री उत्तराययन श्री सूत्र अध्याय
तीसरा गाथा नवमी :—

“आदित्य सचस्य तद्” सद्भा परम पुण्यदा
साध्वर्माआदय मार्ग बहुते परिमस्तर ।”

इस गाथा का भावार्थ है, “कि कदाचित्
पूरे पुण्योदय से शान्त अवस्था करना प्राप्त हो जाए
तो हम तुम हुए वस्तुमात्र पर सच्ची सद्भा का
होना अति दुर्लभ है, क्योंकि बहुत सारे जीव
मिथ्या मोहनीय कर्मोदय से न्याय मार्ग को तुल्य
कर भी न्याय मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं । प्रिय
सज्जनों ! ये भगवान् के बचन स्पष्ट थोड़ा ही मार्ग
है । परन्तु मैं इन भगवान् के बचनों का हम आज

संसार में सार्थक रूप से देख रहे हैं, बहुत सारे मनुष्य अपने आप को महावीर मतानुयायी कहलाने पर भी आज भगवान् के वचनों से विपरीताचरण कर रहे हैं, और कुगुरु, कुदेव कुधर्म के मिथ्या प्रवाह में बहे जा रहे हैं, और दूसरों को मिथ्यात्व समुद्र के प्रवण प्रवाह में बहा रहे हैं। सारांश यह निकला कि मिथ्या विश्वास को छोड़ना ही सम्यक् दर्शन है।



३ पुजेरे “दण्डियों का दाखादिखाने वाखा और सर्व जाति का धनिष्ट मूत पीने वाखा चौविहार व्रत ।”

प्रश्न —सम्यक चारित्र किस का कहते हैं ?

उत्तर —केवल कर्मनिष्ठा और मोक्ष प्राप्ति के लिए ही तप उप संयम इच्छा निरोध कपायव्रमणादि क्रियाओं का ही करना, किसी संसारिक सुख प्राप्ति के लिए इन क्रियाओं का न करना ही सम्यक चारित्र है । इस विषय में भी दशैकाधिक सूत्र के नवम अध्यायन उद्देश ठीकर में कहा है कि तप और आचार रूप धर्म प्रमाण इस लोक और परलोक, कीर्ति वम यश रक्षाया आदि के निमित्त नहीं कर केवल कर्म निर्भेगाय और अरिहन्त पर की प्राप्ति के लिए ही कर ।

सम्यक चारित्र का वास्तविक भाव है कि भगवान् ने जिस रूप में तप संयमादि क्रियाएँ

फरमाई है उन्हें उसी रूप में पालने की पूर्ण चेष्टा करना अगर चौविहार व्रत है तो उस में कोई भी चीज़ नहीं खानी पीनी चाहिए क्योंकि चौविहार व्रत का मतलब है कि कोई भी खाद्य (खाने योग्य) पेय (पीने योग्य) चीज़ खाने पीने के काम में नहीं लाना, ऐसे व्रत सम्यक् चारित्र में कभी भी नहीं आ सकते हैं, जिन चौविहार व्रतों में गौ मूत्र, नीम, त्रिफला चिरायता, गिलो, गुगल, चन्दन, अस-गन्ध, हरड़ा, दाल आदि अन्न की चीज़ भी जिन से पेट अच्छी तरह भर सकता है, चौविहार व्रत में खा लेवे

तो चौविहार व्रत नहीं टूटता है ।

प्रश्न १:-क्या वे उपरोक्त कही हुई चीजें चौविहार व्रत में खानी किसी ग्रन्थ में लिखी हैं ?

उत्तर १:-जो सर्वज्ञ देव के आरमाय हुए प्रमायिक सचे जैन शास्त्र हैं उन में तो ऐसा कही भी नहीं लिखा है, कि चौविहार व्रत में भी गो बूनादि चीजें खा पी ली जाय ।

प्रश्न २:-तो फिर लिखी कहाँ हैं ?

उत्तर २:-लिखनी कहाँ थी । सचे प्रमायिक जैन शास्त्रों में तो ऐसी कपोल कल्पित बातें कही भी नहीं जा सकती कि चौविहार व्रत में भी बाकादि चीजें खा पी जाय और न ही चौविहार व्रत में ऐसी चीजें खाने पीने की मगवान् में खाया हो है ।

प्रश्न ३:-अगर प्रमायिक सचे जैन शास्त्रों में ये बातें नहीं लिखी हैं, तो फिर कहाँ लिखी हैं ?

उत्तर ३:-यह बात बण्डी आत्माराम जी कृत

“जेन तत्त्वादर्थ” उत्तरार्द्ध के पृष्ठ १८५ पर लिखी है और उन्ही दण्डी लोगों के “पांच प्रतिक्रमण सूत्र” नाम वाली पुस्तक के पृष्ठ ४७९ पर भी ऐसा ही लिखा है । उस प्रति क्रमण सूत्र के लेख का भाव इस प्रकार है, “कि चौविहार व्रत में तथा रात्रि के चौविहार में ये निम्नलिखित चीजें लेनी कल्पती हैं, क्योंकि इन चीजों की किसी भी आहार में गणना नहीं की गई है । लघुनीति (मूत्र), नींव की शली, पानड़ा, प्रमुख, पांच अंग, त्रिफला, कडू, करियात, गलो, नाहि, धमासो, केरड़ामूल, बोर-छाली मूल, वावल छाली मूल, कन्थेर मूल, चित्रो, खैयरसार, सूखड़, अरक,

चीड़, अम्यर, कस्तूरी, राख, चूना, रोहिणीवज, इषिद्र, पातली, असगन्ध, चोपचीनी इत्यादि और आगे चलकर सिखा है कि गोमूत्रादि सर्व जाति का अनिष्ट मूत्र भी चौविहार व्रत और रात्रि के चौविहार में पी ले ।

क्या ही अच्छा आत्म कल्याण करने वाले व्रत हैं जिन में मूत पीना चिड़का, चिरायठा इत्यादि खाना और राख काटना और हावादि खाने की भी सुधी छूट है ।

प्रश्न :- क्या स्वामक्यासी छुट जैन व्रत में ये चीजें ग्रहण नहीं करते हैं और उन के माने हुए सखे शास्त्रों में इन चीजों के ग्रहण करने की आज्ञा भी नहीं है ?

उत्तर :- चौविहार व्रत में मूतआदि का पीना और हाथ आदि का खाना तो मनो वर्यित

सिद्धान्त मानने वालों को ही सुवारिक है । शुद्ध प्राचीन स्थानकवासी जैन धर्मी ऐसे मृत पीने रूप गन्दे व्रत नहीं करते हैं और न ही व्रत में दातादि पेट भरने वाली कोई अन्न की चीज ग्रहण करते हैं । शुद्ध स्थानक वासी जैन तो कष्ट में भी अपने व्रत का उल्लंघन नहीं करते । अगर कष्ट में ऐसी वैसी चीजें खा कर शरीर का पोषण किया, तो उन की क्या धर्म श्रद्धा मानी जा सकती है । नियम की परीक्षा तो कष्ट में ही हुआ करती है । कहा भी है—
 “धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत्ति काल परखिए चारी ।”

प्यारे सज्जनों ! व्रत रूप धर्म की रक्षा के लिए तो प्राण भी चले जाए, तो परवाह नहीं करनी चाहिए । धर्म रक्षा के लिए तो धर्म वीर आत्माओं ने सहर्ष धर्म की वेदी पर अपने प्राण तक न्योछावर कर दिए हैं, किन्तु धर्म से मुख नहीं मोड़ा, और होना भी ऐसा ही चाहिए । यह भी कोई सिद्धान्त है कि चौविहार व्रतादि में कष्टापत्ति

में गो सूत्र आदि सबे जाति का अनिष्ट भूत वो के और निष्काम, दास सम्बर, कस्तूरी और चोप-
चीनी आदि का को माप । इस अपने ग्रहण किए
हुए मोक्ष प्राप्ति के लिए संयम प्रत्येक से आपत्ति का
में भी भ्रष्ट न होना ही सम्यक् चारित्र्य है ।

प्रश्न -सम्यक् चारित्र्य की प्राप्ति के योग्य
जीवात्मा कब बन सकती है ?

उत्तर :-जब जीवात्मा लुभा, मांस, शराब
वैश्यागमन शिकार, चोरी, पराधीन गमन आदि
कुम्भसर्पों का त्याग करे । सम्यक् चारित्र्य मायी
आत्माओं का इन चीजों का त्याग करना
परमावश्यक है ।

प्रश्न :-क्या शोषदार नियम विष्णु जीने
की कोई शुक या शास्त्र आदि देता है ?

उत्तर :-नहीं । राजा शास्त्र या सच्चा शुक
आपत्ति काळ में भी लक्ष्य वस्तु ग्रहण करने की
आज्ञा नहीं दे सकता ।

प्रश्न -क्या आप में कदापि आपत्ति रूप
कारण में धर्म विरुद्ध लक्ष्य वस्तु ग्रहण कर जी

जाए, कहीं ऐसा उल्लेख देखा है !

उत्तर :—नहीं । वीर प्रभु के सच्चे शास्त्रों में तो ऐसा उल्लेख कहीं नहीं देखा, कि कारण में दोषदार वस्तु भी निर्दोष हो जाती है !

प्रश्न .—तो आप ने ऐसा उल्लेख कहा देखा है ?

उत्तर :—दण्डी वल्लभ विजय जी कृत “पूजा संग्रह अनेस्तवन संग्रह” नाम वाली पुस्तक में स्तवन संग्रह विभाग के ३१५ पृष्ठ पर दण्डी वल्लभविजय जी आहार के ४७ दोषों की गुहनी में लिखते हैं :—

सज्जनी बिन कारण जे दोष रे, सज्जनी कारण ते निर्दोष रे ।”

दण्डी वल्लभ विजय जी की इस कविता का मतलब यह है, “कि जो चीज़ बिना कारण दोष रूप है, वही चीज़

कारण में निर्दोष रूप है ।

स्पष्टीकरण :—इस कविता का सारांश यह निकला कि रोगादि बिना किसी बीमारी के दोष संपुक्त आहार पानी बिना आये तब तो वह आहार पानी दोषहार है । अगर कोई बीमारी आदि शरीर में कारण हो जाए, तो वह जो बिना कारण में बीत का सेना दोष था रोगादि कारण में इसी बीत को छे लेने तो उस में कोई भी दोष नहीं है ।

प्यारे लखनो ! इन बूझी जागों में कितना सुदेना पण्य हुई निकाला है कि जो दोषहार बीत बिना कारण के लेने तो व्यक्ति की दृष्टि में वह बाप रूप है, और यदि इसी सदोष बीत का रोगादि कारण में लेने तो इन की दृष्टि में कोई भी दोष नहीं है । अगर ऐसा हो माना जाए, फिर तो नियम धर्म का पालन करना कुछ भी कठिन नहीं है । इस उपरोक्त उल्लेख के अनुसार तो माधु अपने निमित्त आहार या गरम पानी या सबकी आदि पकाकर और बीमादि कूट कर

तय्यार की गई वस्तु ले लेवे, तो कारण में कोई दोष नहीं। जब गुरुओं का यह हाल है कि कारण में दोषदार चीज ले लेवें, तो उस में दोष नहीं तो उन के मतानुयायी गृहस्थों का कहना ही क्या है। और जिन की ऐसा धारणा है, सम्भव है वे ऐसा करते भी होंगे। ऐसी २ धर्म विरुद्ध बातें करने पर फिर भी अपने आप को प्राचीन जैन सिद्ध करना यह कितनी विचारणीय बात हैं। जो आपत्ति काल में भी नियम विरुद्ध वस्तु ग्रहण नहीं करते, और न ही उन के शास्त्र उन्हें ऐसा करने की आज्ञा देते हैं, ऐसे शुद्ध वीर शासन अनुयायी स्थानकवासी जैनों को समूछिम या नवीन बतलाना यह अज्ञानता और हठ नहीं तो और क्या है? प्यारे सज्जनों। यह तो वही कहावत हुई कि किसी कुरूपा स्त्री से किसी ने पूछा, “कि आप के यहा एक पद्मिणी रहती है। मैं उस के दूर देशान्तर से दर्शन करने के लिए आया हू। आप मुझे बतला दीजिए कि वह पद्मिणी कहा है। कुरूपा स्त्री ने उत्तर दिया, “प्रिय महाशय। वह पद्मिणी मैं ही हू और लोग मुझे ही पद्मिणी कहते हैं। यह सुन कर वह व्यक्ति

इस कर बोला कि तेरे इस कासे कुरूप सौम्य से
 ही प्रतीत होता है कि सबमुख पक्षिणी वृ ही हैं ।
 वही बात वही समझना ।



४. शुद्ध स्थानक वासी जैन ही प्राचीन जैन हैं ॥

प्रिय सज्जनों ! आज इस ससार में कई मान के भूखे व्यक्तियों ने अनेक प्रकार के कपोल कल्पित सिद्धान्त बनाकर उन कपोल कल्पित सिद्धान्तों के आधार पर अनेक प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित कर दिए हैं । जो सच्चे सिद्धान्तानुयायी शुद्ध जिनेन्द्र देव के फरमाणुष यथार्थ मार्ग पर चलने वाले हैं, और हमेशा से चले आते हैं, वे तो अपने आप को प्राचीन अर्थात् अनादि रूप से चले आने का कहने का दावा करें, तो ठीक ही है, किन्तु जो शुद्ध संयम क्रियाओं का पालन न होने के कारण शुद्ध चारित्र से पतित हो कर नया मत चलाने वाले हैं, वे भी आज इस कलुकाल में अपने आप को प्राचीन सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं । इतना ही नहीं, कि वे नवीन मतावलम्बी अपने को प्राचीन सिद्ध करने की चेष्टा करके ही इति श्री

कर देते किन्तु पढ़ा तक छूठा साइस करते हैं और मिथ्या षेख लिखते हैं कि न केवल जमाधि रूप से छूठ वीर शासमानुयायी बने जाने वाले विद्युद् जैनधमावलम्बी जैमी पर एक आक्रमण रूप होते हैं।

धरम :- क्या किसी व्यक्ति ने छुद् वीर शासमानुयायी जैन स्थानक बानियों पर ऐसा छूठा आक्रमण किया है कि ये स्थानकवासी नहीं हैं ?

उत्तर :- हाँ (दोमिप दण्डी बहम विजय जी कृत "जैन भानु" प्रथम भाग) प्रथम भाग के प्रारम्भ में ही दण्डी बहम विजय जी लिखते हैं "कि यद्यपि स्थानकवासी जैन अपने को जैनमतानुयायी ही कहते हैं, किन्तु वास्तव में स्थानकवासी जैन न जैन हैं और न ही ये जैन की शाखा हैं। बल्कि ये स्थानकवासी जैनाभास हैं,

क्योंकि इन का आचार, व्यवहार, वेष श्रद्धा और परूपणा सर्वथा जैन मत से विपरीत और निराली है । जिस का विस्तार पूर्वक वर्णन करना हम उचित नहीं समझते हैं । दण्डी जी ने यह भी लिखा है, “कि ये (स्थानकवासी) पन्थ बेगुरा और समूर्छिम वत है ।” इसी प्रकार “भीम ज्ञान त्रिशिका” नाम वाली पुस्तक के पृष्ठ ४७ पर भी लिखा है, “कि जैन मत से बाहिर, बिना गुरु, एक गन्दा मुंह बन्दों का पन्थ, जैन मत को कलंक रूप जैनाभास ढूंढीए, व साधु मार्गी, व स्थानकपन्थी के नाम से प्रसिद्ध है ।”

ये स्थानकवासी शुद्ध प्राचीन जैन समाज !

तेरे पर किस तरह लूटे बम्बारी के आक्रमण कपोल कल्पित मिथ्यातावकम्बियों के द्वारा हो रहे हैं। हाय ! तेरी आँख अभी भी नहीं खुली। वे स्थानकवासी युवका और घमै प्रेमियों ! तुम्हारे जिसे यह कितने सेव और शर्म की बात है कि तुम्हें दण्डी ब्रह्म विजय जी ने तो न जैम बतलाया है और न हो जैन की शाखा बतलाई है बल्कि वेगुरा (जिस का कोई गुरु नहीं) वंश बतलाया है और दण्डी जी ने तुम्हारा आचार, व्यवहार, वैष मद्रा पदपनादि को जैन धर्मसे विपरीत और निराशा बतलाया है। इतना कह कर दण्डी जी ने संतोष नहीं किया अपितु बड़ी तक जिज्ञासा है कि इन के आचार विचार जैसे हैं उन का मैं बर्ज्य करना बचित नहीं समझता।

इस भ्रान्ति जनक कैव से स्थानकवासी जैनोपर एक बड़ा भारी गौणमोक्ष विस्फोटक आक्रमण किया गया है। अगर कोई जैन या अजैन इस कैव का पढ़े तो इस के विषय पर कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा। बड़मे बाबू यही स्पष्ट करेंगे कि स्थानक

वासी जैन न मालूम शराब, मास, वेश्या गमन, चोरी जारी आदि क्या २ कुकर्म करते होंगे । जिस से दण्डी जी ने उन के आचार विचार का स्पष्टीकरण नहीं किया है । ऐ स्थानकवासी शुद्ध जैन-समाज ! दण्डी जी ने तुझे वेगुरी और समूर्छिम ठहराया है । इन शब्दों का मतलब है कि स्थानक-वासियों का कोई गुरु नहीं है । ये वेगुरे हैं । समूर्छिम शब्द का अर्थ है कि जो जीव बिना मा बाप से बरसानी मेण्डकों की तरह मिट्टी पानी के मेल से यू ही पैदा हो जाएं । ऐ शुद्ध स्थानकवासी प्राचीन जैन समाज ! अब तो तुझे दण्डी जी ने बिना मा बाप से पैदा होने वाले समूर्छिम मेण्डकों की तरह बतला दिया है । इतना कुछ तेरे पर झूठा आक्रमण होने पर भी अगर तुझे होश न आई, तो फिर कब आएगी । यह लेख तो एक नमूना की शक्ल में तेरे सामने रक्खा है । ऐसे २ झूठे लेख दण्डियों की पुस्तकों में अनेक तरह के पाए जाते पुस्तक पढ़ने के भय से हम उन्हें यहा लिखना उचित नहीं समझते । आप लोगों को इस लेख से

दण्डी जी का विश्वप्रेम और जैन साधुओं की माया सुमति का विचार और तेजस्वें पाप धम्या म्याम (झूठा कर्त्तव्य) रूप से धूम्रा का होना आदि दण्डी जी के सब गुणों का पता चल गया होमा । और हम ने इस हमेसे में पढ़ कर क्या कैना है । जैसा कोई करेगा वैसा भरेगा । किष्प रूप कर्म खाकी तो जानि ही नहीं है, वे अवश्य ही अधममतियों में भोगने पड़ेंगे ।

कैर तो हमें इतना ही है कि अपने आप को जैन कहवाने वाला वे पुजारे लोग ऐसे २ झूठे आश्रमज अपने ही छद्म प्राचीन स्वामकवासी जैन साधुओं पर हो करें ।

प्रिय सज्जनों । मूर्ति पूजक जैन दण्डियों ने अपने कपोल कल्पित पुस्तकों में जहाँ तहाँ जा वह मिथ्या प्रकाय किया है कि हम प्राचीन छद्म जैन मतानुयायी हैं और साधु मार्गी नहीं बरगुरे और समूर्धिम जैनात्म, जैन तो क्या वे जैन की शान्ता भी नहीं हैं, अर्थात् स्वामकवासी छद्म जैन समाज का दण्डियों ने जैन तो क्या जैन की शान्ता

भी स्वीकार नहीं की। अब इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

“स्थानकवासी जैन प्राचीन हैं, या ये पुजेरे ढण्डी लोग” इस विषय पर प्रकाश डालने से पाठकगणों को स्वयं प्राचीन अर्वाचीन का पता लग जाएगा, और ढण्डियों के मिथ्या प्रजाप को भी अच्छी तरह समझ सकेंगे।

धर्म प्रेमी प्रिय पाठकगणों !

जैन धर्म की शुद्ध सनातन अनादि परम्परा को सिद्ध करने वाला श्री महामन्त्र नवकार मन्त्र से और कोई बलवान प्रमाण नहीं है। श्री नवकार महामन्त्र अनादि है। इस लिए शुद्ध वीरशासनानुयायी स्थानकवासी जैन भी अनादि ही हैं।

प्रश्न :- क्या स्यामकबासी जैनों के भी यही माने हुए प्रमाणिक ३२ जैन शास्त्रों में कहीं नबकार महासम्न का उल्लेख है ? हम में तो कई मूर्तिपूजक दण्डियों से यही सुना है कि स्यामकबासी जैनों के माने हुए ३२ शास्त्रों में कहीं भी महासम्न नबकार नहीं लिखा है । क्या ऐसा कहने वालों का कहना शक्य है ?

उत्तर :- हाँ शक्य नहीं तो और क्या ठीक है ।

प्रश्न :- क्या आप स्यामकबासियों के प्रमाणिक ३२ शास्त्रों में कहीं नबकार महासम्न का उल्लेख बतावा सकते हैं ?

उत्तर :- हाँ क्यों नहीं । अगर कोई मूर्तिपूजक दण्डिया पादि तो हम उन्हें शास्त्र खोज कर दिखावा सकते हैं ।

प्रश्न :- नबकार सम्न कौन से शास्त्र में लिखा है ।

उत्तर :- श्री मद्भगवती जी शास्त्र के प्रारम्भ में ही सब से पद्य महा

मन्त्र नवकार के उल्लेख लिखे हुए हैं, इसी प्रकार जीवाभिगम, आदि शास्त्रों में नवकार महामन्त्र के उल्लेख हैं ।

प्रश्न कर्ता का उत्तर:—अजी ! मुझे तो इस विषय में बड़ी भ्रान्ति थी, वह आज सन्मूज दूर हो गई है, पर इससे स्थानकवासियों की प्राचीनता कैसे सिद्ध हो सकती है ?

उत्तर —इसी बात को सिद्ध करने के लिए तो प्रमाणिक शास्त्रों से नवकार महामन्त्र सिद्ध करने की चेष्टा की गई है, अन्यथा इस ओर जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी ।

प्रश्न .— तो इस से स्थानकवासियों की प्राचीनता कैसे सिद्ध हुई ?

उत्तर —क्या आप नहीं समझे । अगर आप नहीं समझे, तो मैं इस का स्पष्टीकरण करके आप को समझा देता हूँ । देखिए नवकार मन्त्र के पाँचवें पद में एमो लोए सव्वसाहणं शठ

व्यापा है जिस का मतलब है कि लोक में रहने वाले कनक, कामिनी और परिग्रह आदि से रहित हिंसात्मक पाप क्रियाओं से विमुक्त सच्ची साधु आत्माओं को नकस्कार हो । साधु शब्द का प्रयोग प्रायः करके प्राचीन शुद्ध स्थानकवासी जैन संप्रदाय के सच्चे साधुओं के लिए ही किया जाता है । जैसे कि आज भी यह बात प्रचलित है कि साधु भागों स्थानकवासी जैन इस में सार्व सिद्ध हो गया कि साधु शब्द का प्रयोग स्थानकवासी जैनों में ही विशेष रूप से पाया जाता है जनादि प्राचीन अवतार मन्त्र में ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं व्यापा कि नमो क्षाय पतिपायं नमोक्षाय सम्भगियायं, नमो क्षोय पिताम्बरीयायं नमो क्षोय दिगम्बरीयानं नमो क्षोय सुरिणं, नमो क्षोय सागरायं नमो क्षाय विजययं । इस लेख से स्पष्ट भाव प्रगट हो जाता है कि स्थानकवासी जैन ही जनादि प्राचीन हैं । अगर मूर्तिपूजन इण्डी मतानुयायों का मत प्राचीन होता तो यमाक्षोय पद में साधु शब्द के स्थान पर सवि, सानर,

सम्बेगी विजय अथवा पिनाम्बरी आदि शब्द का प्रयोग किया हुआ होता । होता कैसे ! जब यह नवीन मूर्त्तिपूजक मतानुयायी पुजेरे लोग पहिले थे ही नहीं तो उन का कथन इस पवित्र महा मन्त्र में कैसे आ सकता था । और भी लीजिए :-शास्त्रों में चार मंगल, चार उत्तम और चार सरण व्रतलाग हैं जैसे कि चत्तारि मंगल के पाठ में आया है यथा :-

“चत्तारि मंगलं अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवली पन्नतो धम्मो मंगलं ।”

इसी तरह चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्ता लोगुत्तमा, सिद्धालोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवली पन्नतो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारिसरण पवज्जामि, अरिहन्ता सरण पवज्जामि, सिद्धासरण पवज्जामि साहू सरण पवज्जामि, केवली पन्नतो धम्मो सरण पवज्जामि” इन उल्लेखों से भी यही बात स्पष्ट रूप

आया है जिस का मतलब है कि लोक में रहने वाले कर्मक, कामिनी और परिग्रह आदि से रहित हिंसात्मक पाप क्रियाओं से विमुक्त सभी साधु आत्माओं को नकस्कार हो । साधु शब्द का प्रयोग प्रायः करके प्राचीन छद्म स्थानकवासी जैन संम्प्रदाय के सच्चे साधुओं के लिए ही किया जाता है । जैसे कि आज भी यह बात प्रचलित है कि साधु मार्गों स्थानकवासी जैन इस से साफ सिद्ध हो गया कि साधु शब्द का प्रयोग स्थानकवासी जैनों में ही विशेष रूप से पाया जाता है अर्थात् प्राचीन नक्कार मन्त्र में ऐसा बोलने कही भी नहीं आया कि जमो ज्ञोय पतिपायं जमाजाम सम्भोगियायं, जमा ज्ञोय पिताम्बरीयायं जमो ज्ञोय डिमम्बरीयायं जमो ज्ञोय सूरिबं, जमो ज्ञोय सागरायं जमो ज्ञोय विजययं । इस दृष्टि से स्पष्ट भाव प्रगट हो जाता है कि स्थानकवासी जैन ही अर्थात् प्राचीन हैं । अगर सृष्टिपूजक इण्डी मतानुयायों का मत प्राचीन होता तो जमोज्ञोय पद में साधु शब्द के स्थान पर सूरि, सागर,

दृष्टि से होता, तो स्थानकवासी शास्त्रों या ग्रंथों में भी अवश्य ही होता, किन्तु ऐसा नहीं है। सूरि या सागरादि शब्द तो दण्डियों की जहाँ तहाँ पुस्तकों में उन्हीं के द्वारा लिखे हुए पाए जाते हैं।

प्रश्न :—क्या मूर्तिपूजक लोग शुद्ध स्थानकवासी जैनों को नवीन मानते हैं ?

उत्तर :—हां देखिए दण्डी आत्माराम जी कृत अज्ञानतिमिर भास्कर (द्वितीय खण्ड) पृष्ठ १६ पर लिखा है “कि स्थानकवासी ढूँढक पन्थ संवत् १७०६ में निकला है। उधर दण्डी वल्लभ विजय जी अपने बनाए हुए “जैन भानु” के पृष्ठ ३ पर लिखते हैं :—

+कि ढूँढीए लोग श्वेताम्बरी जैनियों में निकला हुआ एक छोटा सा फ़िरका

से सिद्ध होती है कि स्थानकवासी जैन ही अनादि प्राचीन हैं क्योंकि यही भी साधु मंगल, साधु सख और साधु उत्तम शब्द ही ग्रहण किये हैं अर्थात् संसार में पवित्र साधु आत्माएँ मंगल रूप हैं और उत्तम हैं और शरय ग्रहण करने योग्य हैं, किन्तु सूरि या सामर को मंगल उत्तम या शरय ग्रहण करने योग्य नहीं कहलाया है। भाई साहिब ! जब तो आप समझ गए होंगे कि स्थानकवासी जैन ही अनादि प्राचीन हैं क्योंकि उन के माने हुए शास्त्रों में पुनः २ साधु शब्द का प्रयोग किया गया है। मूर्ति पूजक जैन दण्डियों के ग्रंथों में तो नहीं लहरी साधु शब्द की जगह सूरि, सामर, विष्णु इत्यादि शब्द ग्रहण किए गए हैं जो कि प्रमाणिक जैन शास्त्रों में दृष्टिगत नहीं होते।

शंका :—स्थानकवासी जैन साधुओं के लिए भी तो हुंकार शब्द का प्रयोग किया गया है।

शंका का समाधान —यह निम्नक मूर्तिपूजक दण्डियों का ही श्रेय वह प्रयोग किया हुआ शब्द प्रतीत होता है। अगर यह शब्द स्थानकवासी जैन

लिखते हैं :-

“कि जैन स्थानकवासियों का प्रारम्भ १७०८ में हुआ” उधर ‘गण्ण दीपिका समीर’ (संवत् १९६७ की लिखी हुई) नाम की पुस्तक के पृष्ठ १७ पर लिखा है -

“कि ढूंढियों को चले हुए २३८ वर्ष हुए हैं और इसी पुस्तक के ४७ पृष्ठ पर लेखक महाशय ने यह स्वीकार किया है कि ढूंढक मत की पटावली आज से कोई ४०० वर्ष पहिले की ही है, इस से पहिले की नहीं मिलती”

इस लेख से यह बात स्पष्ट हो गई कि गण्ण दीपिका समीर के रचियता दण्डी ने स्थानकवासी जैनों को ४०० वर्ष से होना स्वीकार किया है” और उधर दण्डी आत्माराम जी अपनी बनाई हुई पुस्तक “जैन तत्त्वादर्श उत्तराद्ध” के पृष्ठ ५३६

हे और यह मत कोई २५० वर्ष से निकला हुआ है ।

उधर दण्डी नाम सुन्दरजी 'ही सृष्टिपूजा शास्त्रोक्त है' नाम वाली पुस्तक के ५० पृष्ठ पर

+देखिए ग्रयान्धता में जब जीव आता है, तब उसे पूर्वापर के विरोध का विचार नहीं' रहता है जैन मानु नामक पुस्तक के प्रथम भाग के आरम्भ में ही दण्डी ब्रह्मम विजय जो स्थानकवासी जैनों के विषय में लिखते हैं, 'कि ये लोग न जैन हैं, न हो जैन की शान्ता हैं, बल्कि जैमामास हैं । और वही पुस्तक के पृष्ठ ३ पर दण्डी जी आप ही लिखते हैं "कि हुँदीए नाम रवेताम्बरी जैनियों में से निकला हुआ एक छोटा सा पिरका है" साथ कहा है जब जीव के सिध्दाएब मोहनीय कर्म का उदय होता है तब उसे कुछ भी समझ नहीं आती । देखिए दण्डी ब्रह्मम विजय जी के विनिवृत्त जैनही परम्पर में एक द्वार के किर्तन विरोधी हैं ।

लिखते हैं :-

“कि जैन स्थानकवासियों का प्रारम्भ १७०८ में हुआ” उधर ‘गण्प टीपिका समीर’ (संवत् १९६७ की लिखी हुई) नाम की पुस्तक के पृष्ठ १७ पर लिखा है -

“कि ढूँढियों को चले हुए २३८ वर्ष हुए हैं और इसी पुस्तक के ४७ पृष्ठ पर लेखक महाशय ने यह स्वीकार किया है कि ढूँढक मत की पटावली आज से कोई ४०० वर्ष पहिले की ही है, इस से पहिले की नहीं मिलती”

इस लेख से यह बात स्पष्ट हो गई कि गण्प टीपिका समीर के रचियता दण्डी ने स्थानकवासी जैनों को ४०० वर्ष से होना स्वीकार किया है” और उधर दण्डी आत्माराम जी अपनी बनाई हुई पुस्तक “जैन तत्त्वादर्श उत्तरार्द्ध के पृष्ठ ५३६

पर लिखते हैं :-

“कि हुंडक मस १७१३ से १७४६ के बीच में निकला है” दण्डी आत्माराम जी के इस लेख से अधिक से अधिक स्थापक वासियों को निम्नो हुए २८२ वर्ष बैठते हैं।

क्या ही गुरु बेसे में गढ़बढ़ की खिचड़ी पकाई है ! जोकि गुरु बेसे का परस्पर एक का दूसरे से लेन्य नहीं मिलता है। जब दण्डी आत्माराम जी और उन के पट्टधर दण्डी ब्रह्म विजय जी इन दोनों के बीच भी आपस में नहीं मिलते हैं। शिष्य कुछ और लिखता है, गुरु कुछ और ही लिखता है। जब इन दोनों गुरु बेसों की आपस में ही एक दूसरे से सम्मति नहीं मिलती, इस से तो पही सिद्ध होता है कि एक को दूसरे पर विरवास नहीं है। जब यह गुरु बेसे आपस में एक सम्मति रूप होकर आपस के लेशों के विरोध का हो साऊ नहीं कर सके, एक का लेश दूसरे के लेश का विरोध कर रहा है ऐसी व्यवस्था में दूसरों के

लिए अर्वाचीन और प्राचीन के निर्णय का यह दोनों गुरु चेले क्या दावा कर सकते हैं। गुरु चेले दोनों के लेखों में परस्पर रूप से बड़ा भारी अन्तर हैं। अब किस को सत्यभाषी माना जाए और किस को मिथ्याभाषी? असल बात यह है कि जब जीव के मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय होता है, तो उसे पूर्वापर के विरोध का भी भान नहीं रहता। मिथ्यातोदय से ऐसा हो जाना एक स्वभाविक बात है। मदछकित मनुष्य की बुद्धि जिस तरह ठीक व्यवस्था में नहीं रहती, मिथ्यात का प्रभाव भी मनुष्य के दिल पर वैसा ही पड़ता है। हमें इतना खेद प्राचीन शुद्ध स्थानकवासियों को नवीन बतलाने का नहीं है, जितना कि साधु के भेष में होकर मिथ्या भाषण पर है। जो चीज सही हैं, वह सही ही रहनी हैं। किसी करोड़पति को कोई दीवालिया कहे, तो उस द्वेष बुद्धि व्यक्ति के कहने से जिस के घर में करोड़ रुपया की रकम पड़ी हो, वह किसी के कहने से दीवालिया या निर्धन नहीं हो जाता। साहूकार और दीवालिया

का पता तो त्क्रम के मुक्तान के समय पर ही लगता है कि कौन दीवानलिया है और कौन धमात्य है ? इसी तरह अर्वाचीन प्राचीन का भी पता तभी लगता है जब भगवान् बीर स्वामी के पूर्ण अद्विस्ता मय धर्मे और रैव गुह सम्बंधो सही अद्वान का मुक्तवका किया जाए । अगर मयवान् महावीर स्वामी जैन धर्मे के प्रचारक तीर्थंकर रैव मूर्ति पूजक होते तो भगवान् महावीर जो के बतलाए हुए प्रमाणिक ३२ जैन शास्त्रों में भी तीर्थंकर मूर्तिपूजा का विधान होता । जब भगवान् महावीर स्वामी जैन धर्मे के मठा और सखे धर्म प्रचारक मूर्तिपूजक नहीं थे, तो जैन धर्मे में तीर्थंकर मूर्तिपूजा का होना यह किसी व्यवस्था में भी सिद्ध नहीं हो सकता । भगवान् महावीर स्वामी ने मानव जीवन के कल्याण के लिए धर्मेक प्रकार के धार्मिक क्रियामुठान बतलाए हैं किन्तु जड़ मूर्तिपूजा का आरम्भकल्याण के लिए किसी भी प्रमाणिक शास्त्र में कथन नहीं किया है । भी उत्तराध्ययन शास्त्र जो कि भगवान्

महावीर स्वामी ने अपने निर्वाण काल के समय कार्तिकवदि अमावस की रात्रि को अपने मुक्त कण्ठ से फरमाया था; उस के अध्ययन २९वें में श्री भगवान् महावीर स्वामी ने ७३ बोलों का फलादेश बतलाया, अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, चौबीसत्था, प्रतिक्रमण, आलोचनादि धर्म क्रियाओं को मोक्ष प्राप्ति रूप बतलाया, किन्तु मन्दिर बनवाना या मूर्त्तिपूजा का करना कहीं पर भी इन ७३ बोलों के कथन में नहीं आया है। अगर मूर्त्तिपूजा मोक्ष देने वाली होती, तो यहां पर भी भगवान् उस का कथन करते। करते कैसे! अगर जडमूर्त्ति पूजा मोक्ष देने वाली होती, तब तो कथन किया जाता। भगवान् ने तो सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र को ही मोक्ष प्रदाता माना है। जडमूर्त्ति न सम्यक् ज्ञान रूप है, न ही सम्यक् दर्शन रूप है, और न ही सम्यक् चारित्र रूप है। उपरोक्त तीनों गुणों से प्रतिमा शून्य है, अतः उस से क्या मिल सकता है? जड की पूजा द्वारा जड बुद्धि होने के सिवा उस से और कुछ भी प्राप्ति नहीं हो

सकती। और भी उत्तराध्यायन सूत्र के २६वें अध्याय में साधु की दिन रातमें करण योग्य इस प्रकार की समाचारी स्पष्ट रूप से कथन की गई है और इसी अध्ययन में साधु के जीवन का कार्यक्रम भी भगवान् ने सुबोधभाति से बतकाया है, कि अमुक २ कार्यक्रम अमुक २ समय में करना, किन्तु चैत्यवन्दनादि का इस अध्याय में भी कोई कथन नहीं आया। इसी अध्ययन को २१वीं गाथा के एक श्लोक में भगवान् महावीर ने आत्मकल्याण के लिए स्वाध्याय और गुरु वन्दना तो बतलाई है किन्तु चैत्य वन्दना का नाम तक भी नहीं है। देखिए वह श्लोक यह है :-

“गुरुं धन्दिस्तु, सज्ज्माय, कुञ्जा दुःख
विमायस्त्रयं ।”

इस श्लोक का भावार्थ है, ‘‘कि काम, ध्यान संयुक्त सचे गुरु देव को नमस्कार करके फिर आत्मकल्याण क करते सचे शास्त्रों की स्वाध्याय करें आ कि सर्व दुःखों का नाश करते वाली है ।

यहा भी स्वाध्याय को ही दुःखों से विमुक्त करने वाली बतलाया है, किन्तु चैत्य वन्दना को दुःख विमोचन करने वाली नहीं बतलाया, पाठकगणों को इस उपरोक्त लेख से भली प्रकार पता चल गया होगा कि स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी ही प्राचीन हैं ।

यह टण्डी मत तो भगवान् महावीर स्वामी के बहुत समय के बाद १२ वर्ष आदि कालापत्ति के कारण साधु वृत्ति पालन न होने से निकला है । न ही भगवान् महावीर स्वामी मूर्त्तिपूजक थे, और न ही उन्होंने मूर्त्तिपूजा का उपदेश दिया था । यही कारण है कि शुद्ध वीर शासनानुयायी स्थानकवासी जैनों में न ही मूर्त्तिपूजा की मोक्षप्राप्ति के लिए प्रवृत्ति है, और न ही मूर्त्तिपूजा का उपदेश है ।

देखिए पुराण कर्ता व्यास जी जिन को अनुमान ५००० वर्ष का समय हो गया है, शुद्ध सनातन जैन साधुओं

के असखी घेय के विषय में क्या कहते हैं ।

“मुण्डमाश्रित वस्त्रघ, कुट्टिपात्र समन्वितं,
दधानं पुञ्जिकहाणे, चालयन्ते पदे पदे”

इस श्लोक का भाव है कि सिर मुण्डित मैसे (रस जये हुए) वस्त्र काट के पात्र हाथ में रजोहरण (झोषा) पग २ पद रख कर सबेरे अर्थात् रजोहरण से कीड़ी आदि अशुभों को दटा कर पग रते” और भी कहा है :-

वस्त्र मुक्त तथा हस्त क्षिप्पमार्गं मुखे सदा,
धर्मोपति भ्याहरन्ततं वमस्कृत्प स्थित हरे ।

इस श्लोक का भावार्थ है, “कि मुखवस्त्र (मुखपति) करके दके हुए सदा मुख को तथा किसी कारण मुखपति को भोजमादि समय में धजग कर तो हाथ मुख के आगे रते, वस्तु मुखे मुख में रहे और न बाधे ।” इन श्लोकों के अर्थ से स्पष्टबताती मुख पर हमेशा मुखपति

सत्यासत्य निर्णय

लगाने वाले साधुओं का ही चिह्न सिद्ध होता है पीले वस्त्र और हाथ में लट्टु और हाथ में मुहपत्ति का नाम लेकर एक कपड़ा रखना, ऐसे वेपधारी अपने को जैन साधु कहलाने वाले दण्डियों के वेप की सिद्धि इन श्लोकों से भी नहीं होती, जिन का ऐसा कहना है कि स्थानकवासी २५० या ४०० वर्ष से ही निकले हैं, ये बात सर्वथा मिथ्या है। पाच हजार वर्ष की स्थानकवासी जैन साधुओं के होने की सिद्धि तो पुराण कर्ता व्यास जी के लेख ही बतला रहे हैं। इतने स्थानकवासी जैनों की प्राचीनता सिद्धि के प्रमाण मिलने पर भी यदि प्रतिपक्षी मतान्ध दण्डियों के नेत्र नहीं खुले तो इस में किसी का क्या दोष है। दुर्भाग्य से सूर्योदय होने पर भी उल्लू को नजर न आए, तो इस में किसी का क्या दोष !

५ हा मुखपत्ति मुख पर बांधनी ही जैन शास्त्रोक्त है ।

प्रश्न —क्यों मुखपत्ति के विषय में आप का क्या विचार है ? धागा डालकर मुख पर बांधनी चाहिये या हाथ में रखनी चाहिये ?

उत्तर :—कभी यह बात आप ने सुन पूछी कि मुखपत्ति धागा डालकर मुख पर बांधनी चाहिये या हाथ में रखनी चाहिये । क्या आप को इतना भी पता नहीं है कि मुखपत्ति मुख पर बांधने से ही हो सकती है अन्यथा नहीं, नाका डालने से ही पागामा काम में आ सकती है अन्यथा नहीं, इसी प्रकार मुखपत्ति धागा डालने से ही काम में आ सकती है अन्यथा नहीं । मुख पर रहे तो मुखपत्ति हाथ में रहे तो हथपत्ति । जिस तरह सिर पर रहे तो पहनी गले में पहना जाए तो बहुरक्ता कमर में बांधी जाए, सा धोती, पायों में पहनी जाए, सा पगरवो (शूती) । सिर

की पगड़ी को ही पगड़ी कहा जाएगा, किन्तु कमर से सम्बन्धित धोती को पगड़ी नहीं कहा जाएगा। और न ही पायों से सम्बन्ध रखने वाली पगरखी (जूती) को धोती कहा जाएगा। इसी तरह धागा डालकर मुख पर बांधने से ही मुखपत्ति कहला सकती है। हाथ में लेने से हाथपत्ति, कमर में पहने हुए चोलपट्टे में टांग लेने से कमरपट्टी ही कहलाएगी, उसे कौन बुद्धिमान पुरुष मुखपत्ति कह सकता है? मुख पर लगाने से ही मुखपत्ति का भाव सिद्ध हो सकता है। अगर कोई मनुष्य कमर में लगाई जाने वाली धोती खोलकर हाथ में ले ले, तो नशाच्छादन का मतलब पूरा नहीं हो सकता। इसी तरह हाथ में मुखपत्ति रखने से वायुकाया की रक्षा रूप कार्य हाथपत्ति से सिद्ध नहीं हो सकता, और जो, “हां मूर्त्तिपूजा शास्त्रोक्त है, “इस नाम की पुस्तक में मुखपत्ति के विषय में टोप बतलाए गए हैं, वे सन्मूल मिथ्या हैं। उस पुस्तक में लिखा है “कि मुखपत्ति लगाने से असंख्य अस जीव पैदा हो जाते हैं, स्पष्ट बोला

भी नहीं जाता और मुखपत्र का बोधना
जोगों में निम्न का कारण है ।

सञ्चर्चो !

मुख पर मुखपत्र बोधने से जल जीव
पेदा नहीं हो सकते हैं, क्योंकि मुख की मरम
हवा मुखपत्र पर पड़ती रहती है इस लिए इस
मरमाई के कारण जल जीव पेदा नहीं हो सकते ।
जो यह किन्ना है कि स्पष्टतया बोधा नहीं जाता
यह बात भी सर्वथा सिद्धा है क्योंकि स्थानकवासी
जैन साधु मुख पर मुखपत्र के होते हुए भी नहीं
बीस २ तीस २ इकार की जनसंख्या में लोग
कौटस्पीकर(Load Speaker)के काम लेते हैं वे बिना
कौटस्पीकर ही स्पष्ट और प्रबण्ड रूप से अपनी
भावाङ्ग तमाम जनता तक पहुँचा देते हैं और जो
तीसरी बात यह किन्नी है कि मुखपत्र बोधने से
जोगों में निम्न होती है यह भी एक प्राप्ति ही है ।
हमें जिनाका पालन करनी है या जोगों को प्रसन्न
करना है ।

मुखपत्र मुख पर बोधने में कोई भी दोष

नहीं, अपितु बहुत सारे गुण हैं । जैसे कहा भी है:-

दोहा :-

मुखपत्ति में तीन गुण,
जैन लिंग, जीव रत्न,
थूक पड़े नहीं शास्त्र पर,
तीनों गुण प्रत्यक्ष ॥

अर्थात् त्रस और वायुकायादि जीवों की रक्षा, शास्त्र पर थूक का न पड़ना, और सच्चे जैन साधुओं की निशानी, ये तीनों गुण मुखपत्ति में ही कहे हैं, किन्तु हाथपत्ति में नहीं । मुखपत्ति मुख पर बाधने के विषय में इन दण्डी लोगों की तरफ से हमारे पास बहुत सारे प्रमाण हैं । जिन में से केवल एक या दो लेख ही हम यहाँ दे रहे हैं ।

देखिए “मुंहपत्ति चर्चा सार” (गुजराती भाषा में) पुस्तक जिस के मुख्य सग्रह कर्ता पन्यास श्री रत्न विजय जी गणि हैं और प्रकाशक

यो विजयमोति सूरि जन पुस्तकालय चीन्ही रोड
अहमदाबाद) ।

मुहपत्ति चर्चा सार पुस्तक में जो कि पुत्रों
लोगों की ओर से ही अहमदाबाद से छपी है
सब में मुख पर मुहपत्ति बांधने के प्राचीन बहुत
सारे उदाहरण मिलते हैं ।

“मुहपत्ति चर्चा सार” नामक पुस्तक की
भूमिका में लिखा है -

“कि लग भग आज से ७५ या ८०
वर्ष पहिले श्वेताम्बर मूर्ति पूजक सब
में कोई भी गच्छ या समुदाय या
उपाध्यय ऐसा नहीं था कि जिस में
मुख पर मुहपत्ति बांधे बिना व्याख्यान
किया जाता हो, या सुनने वाले बिना
मुख पर मुहपत्ति बांधे सुनते हों । आज

भी मुंहपत्ति बांध कर ही व्याख्यान वांचना या सुनना कल्पता है । ऐसा मानने वाले और इस मान्यता को चुस्तपने से बनाई रखने वाले श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी का समुदाय अस्तित्व रखता है (अर्थात् आज भी विद्यमान है) उन में से मुख्य २ स्थल अहमदाबाद, पालीताना, पाटन, उंभा, पेथापुर, फिलोधि आदि कच्छ देश के अमुक स्थान प्रसिद्ध हैं । आगे चल कर इसी भूमिका में स्पष्ट रूप से लिखा है कि मुंहपत्ति बांधने की पृवृत्ति केवल अंध प्रवृत्ति या गतानुगति

प्रशस्ति नहीं है, किन्तु पूर्वापर से चली आई है, प्रसिद्ध ९ सर्व सुविहित आचार्यवरों की मान्य और सशास्त्रीय वृत्ति है, और इसी लिए वह शास्त्र में अन्तर्गत होने से तीर्थरूप है, और इसी भूमिका में इस बात का भी स्पष्टीकरण किया है कि “जैन धर्म प्रकाश” पत्रकारों ने अनजानपने से लिखा दावा है “कि मुहपत्ति की अयोग्य प्रशस्ति को पंजाब से आए हुए नवीन मुनियों ने तोड़ा।”

इस लेख से यह भाव निकलता है कि जब इण्डी वल्लभ विजय की के मान्य गुरु इण्डी आत्मा राम जी आदि ध्यानकामी हुए पवित्र दिशा को

छोड़कर दण्डी बाणा धारण करके कच्छ आदि देशों में जाकर पुजेरे सम्प्रदाय में मुह पर मुखपत्ति बाधने की पवित्र प्रथा को जो कच्छ आदि देशों में चली आती थी, तोड़ा। हाँ २ ठीक है। ऐसा होना भी तो बहुत कुछ सम्भव था, क्योंकि दण्डी आत्माराम जी मुहपत्ति तोड़कर हाथपत्ति वाले दण्डी बने थे, जिस ने स्वयं मुहपत्ति तोड़ी हो, यदि वह दूसरों की तुड़ावे, तो इस में आश्चर्य ही क्या है। जो स्वयं जैसा होता है, वह औरों को भी अपने जैसा बनाने की चेष्टा किया ही करता है। भूमिका लेखक का आशय है, 'कि ऐसी मिथ्या धारणा दूर हो, कि जिस से मुखपत्ति बाधने की शुभ प्रवृत्ति को अयोग्य प्रवृत्ति भाव देकर मुहपत्ति तोड़ने की चेष्टा की जाती हो।' भूमिका में आगे जाकर लिखा है कि पन्थास श्री रत्न विजय जी महाराज के पास हस्तलिखित एक ग्रंथ है, जिस में मुख पर मुहपत्ति बाधने के बहुत सारे प्रमाण हैं।

पाठकगणों। ये जो कुछ मुख पर मुखपत्ति

बोधने की पुष्टि के प्रमाण इस मूमिका में विषम हैं। ये पुनरे लोगों की तरफ से ही सचे हुए प्रमाण हैं। 'मुहपति चर्चा सार' नाम वाली पुस्तक में मुख पर मुहपति बोधी हुई है ऐसा भी हीर निखय भी सुरि का चित्र है और उस के नीचे हम के चर्चे का चित्र है। चले में भी मुहपति मुख पर बसाई हुई है। उसी में हीर निखय भी के मुखपति संयुक्त चित्र के सामने अकबर बादशाह का चित्र देकर नीचे लिखा है कि भी हीर निखय जो अकबर बादशाह को उपदेश दे रहे हैं, जिस का अनुमानत ४२५ वर्ष का समय हो चुका है। 'मुहपति चर्चा सार' नामक पुस्तक में और भी बहुत सारे पुनरे साधुओं के चित्र हैं। हमें में मुख पर मुखपति बोधी हुई है, और हम का वप भी श्वेत है। इन पुनरे साधुओं के चित्र के पास कोई भी अट्ट धारि दखी साधुओं का विशेष चिह्न नहीं है। हम चित्रों से स्पष्ट स्थानकवासी छंद प्राचीन जनों का ही श्वेत वप प्रकट होता है।

६. मुख पर मुखपत्ति बांधने के विषय में दण्डी वल्लभ विजय जी की हस्त लिखित चिट्ठी ॥

दण्डी आत्मा राम जी ने भी मुखपत्ति मुख पर बाधनी ही स्वीकार की है। देखिए उन की निम्नलिखित चिट्ठी की नकल उस का प्रमाण दे रही है।

एक पुजेरे आलम चन्द नाम के साधु ने मुखपत्ति के विषय में दण्डी आत्मा राम जी से उन की निज की सम्मति पत्र द्वारा मांगी थी, तो दण्डी वल्लभ विजय के मान्य गुरु दण्डी आत्माराम जी ने पुजेरे साधु आलम चन्द जी को पत्र द्वारा अपने शब्दों में जो उत्तर दिया है। उस चिट्ठी की नकल आगे दी जाती है इस को पढ़कर पाठकगणों

को अन्धों तरह पता चले भापगा कि इण्डी बहम विजय के मास्य शुद्ध इण्डी आत्माराम जी ने भी मुहपति मुक्त पर लगामी ह्री स्वीकार की है ।

चिट्ठी की मज्जा :-

श्री सु० सुरत बंदर

मुनि श्री आत्म चन्द जी योग्य
 क्षि० आचार्य महाराज श्री श्री १००८
 श्री मद्रिजया नन्द सूरेश्वर जी (आत्मा
 राम जी) महाराज जी आदि साधु
 मंडल ठाने ७ के तरफ से वंदणा
 ऽनुबंदणा १००८ धार धामनी । चिट्ठी
 तुमारी आइ समंचार सर्व जाणे है ।
 यहा सर्व साधु सुख साता में है,
 तुमारी सुखसाता कर समचार लिखना—

मुहपत्ति विशे हमारा कहना इतना हि है कि मुहपत्ति बांधनी अच्छी है और घणे दिनों से परंपरा चली आई है, इन को लोपना यह अच्छा नहीं है।

हम बांधनी अच्छी जाणते हैं परंतु हम ठूंढीए लोक में सें मुहपत्ति तोड़के नीकले हैं इस वास्ते हम बांध नहीं सक्ते है और जो कदी बांधनी इच्छीए तो यहां बड़ी निन्दा होती है और सत्य धर्म में आये हुए लोकों के मन में हील चली हो जावे, इस वास्ते नहीं बांध सक्ते हैं सो जाणना ॥

अपरंच हमारी सलाह मानते तो

तो तुम कों मुंहपति बांधने में कुछ भी हानि नहीं है । क्योंकि तुमारे गुरु बाधते हैं और तुम नहीं बाधो यह अच्छी बात नहीं है । आगे जैसी तुमारी मरजी, हम ने तो हमारा अभि प्राय सिख दिया है सो जायना ।

और हम को तो तुम बाधो तो भी बैसे हो और नही बाधो तो भी बैसे ही हो परं तुमारे हित के वास्ते सिखा है आगे जैसी तुमारी मरजी ।

१६४७ फस्तक यदि ०)) आर बुध दसखत बल्लभ विजय की बंदरणा बांचनी ।
दीवाली के रोज दस धजे चिठी लिखी है

(इस उपरोक्त चिट्ठी के थोड़े से लेख में ही ठाम २ पर बहुत सी अशुद्धियाँ भरी पड़ी हैं, जैसे को निकले हैं के स्थान पर नोकले हैं, तुम्हारी के स्थान पर तुमारी, दिया की जगह दीया है। चिट्ठी के स्थान पर चिठी, आई की जगह आइ, समाचार की जगह समचार, विषय के स्थान विशे, इत्यादि बहुत सारी अशुद्धियाँ हैं जो स्थाना भाव के कारण हम ने यहां पर नहीं दी है। प्यारे सज्जनों जिस व्यक्ति के विषय में पण्डित्य भाव की दिलखोलकर इतनी डींगें मारी गईं जो व्यक्ति विद्यावारिधि, अज्ञानतिमिर तरिणी आदि उपाधियों से अलंकृत माना जाता हो क्या यह एक पूर्वोक्त अशुद्धियों का उस व्यक्ति के विषय में पण्डित्य और विद्वतान्त दर्शक का पूर्ण उल्लेख नहीं है। वाह २ ऐसे २ अशुद्ध लेखक और वक्ता को यदि बड़ी २ उपाधियों ने अलंकृत किया जाए, यह एक मूर्ख समाज का प्रमाण नहीं तो और क्या है। आज कल के तीसरी चौथी श्रेणि के बालक बालिकाएँ भी ऐसी अशुद्धियों का काफी अनुभव कर सकते हैं, किन्तु

एक मान्य व्यक्ति ऐसी अशुद्धियों का बाध न रखे यह कितनी विचारणीय बात है। प्रिय सज्जनों ! इस उपरोक्त उल्लेख की अशुद्धियों से मूर्तिपूजक लोगों के भीमान् आचार्य जी की विद्वता का पूर्वतया पता चल जाता है कि वह कितने योग्य और पण्डित्य भाषी हैं हमें इस ओर विदीप नश्य देने की आवश्यकता नहीं है। हमारा तो मुख्य बहरेख मुखपति की सिद्धि से ही है।)

यह उपरोक्त चिट्ठी "जैनाचार्य जी आत्मा नन्द जन्म शताब्दि स्मारक ग्रंथ के गुजराती विभाग के पृष्ठ १२४ से नक़्क़ की गई है। यदि किसी को शंका हो तो वह उपरोक्त पुस्तक का उपरोक्त पृष्ठ देखकर अपनी शंका का समाधान कर ले।

यह उपरोक्त चिट्ठी इण्डी बल्लभ विजय जी के अपने हाथों की लिखी हुई है। इन के मान्य गुरु इण्डी आत्माराम जी तो मुख पर मुखपति बाधने को इस पत्र द्वारा सिद्धि कर रहे हैं। यदि कोई इन्हीं का शिष्य होकर अपनी गुरु के केष का विरोध करके यह कहे कि मुखपति मुख पर लमानी

नही चली है, हाथ मे रखनी चाहिए, यह एक अपने ही गुरु की अधिनय करनी है ।

—०—

दान देते समय :

श्री जैन माटरन स्कूल को भी

याद रखें ॥



७ क्या पुजेरे लोग गंगा
यमुनादि के स्नान से पाप
रूप दोष निवृत्ति मानते है ?

अब हम दृष्टियों के उस झूठे इन्ध का
खुजासा कर देगा भी उचित समझते हैं कि जो
अपमं आप को ही सच्चे जैन कहवाने का दम भरते
हैं । देखिए नीचे का अर्थ :-

“कि स्थानकवासी जैन साधु घासी
राम और जुगल राम को जोकि
स्थानकवासी कठिन साधुश्रुति से अष्ट
हो चुके थे, उन को पुजेरों ने गंगा
स्नान कराके शुद्ध किया । फिर उन्हें
अमृतसर में लाया गया और फिर

उन्हें पिताम्बरी दिक्षा दी गई ।

प्रमाण के लिए देखिए ईस्वी सन १९०८ फरवरी ता० १ आत्मानन्द जैन पत्रिका का पुस्तक नवमा अंक तीसरे का लेख नीचे मूजब प्रकरण १९ मा ।)

पाठकगणों को इन जब पूजकों की करतूत का पता चल गया होगा कि इन को महामन्त्र नवकार पर और अपने अहिंसामय शुद्ध जैन धर्म पर विश्वास नहीं है । यदि होता तो उन दो पतित व्यक्तियों को शुद्धि के लिए गंगा में जाने की झूठी चेष्टा न करते । वास्तव में बात यह है कि ये मूर्ति-पूजक जो अपने आप को जैन कहलाते हैं, ये गंगा यमुनादि तीर्थों पर स्नान करने से पाप निवृत्तिरूप शुद्धि नहीं मानते हैं, बल्कि गंगा यमुना में आत्म शुद्धि निमित्त स्नान करने को मिथ्यात (जहालत) मानते हैं । उन दो समय भ्रष्ट व्यक्तियों को जिन को गंगा स्नान के लिए ले जाया गया, इस का कारण केवल स्थानकवासी जैनों के दिल को आघात पहुंचाना था । आप लोगों को इन की

स्वास्ता का पता लग गया होमा कि ये लोग कितने महावीर स्वामी के असली सिद्धान्त पर चलने वाले हैं। जिन दोनों व्यक्तियों ने बहुत समय तक अज्ञान, हिंसा परित्याग आदि विपुल गुणों का पावन किया था, उन को ही इन लोगों ने अशुद्ध माना। यदि मानव संयमादि गुणों के पारब्रह्म करने से अशुद्ध हो सकते हैं तो क्या चोरी जारी आदि वृत्तियों से शुद्ध होंगे? नहीं नहीं ये उन लोगों की सरासर हठ और मिथ्यात्व दोष की प्रवृत्ति है। अच्छा इन वृण्डी लोगों ने उन दो व्यक्तियों को तो गंगा जी स्नान कराकर उन्हें शुद्ध मानकर अपनी मूर्खता का परिचय दे दिया है। किंतु वृण्डी आत्मा राम जी भी तो अनुमान २९ वर्ष तक शुद्ध स्थानकवासी जैन साधुओं में रहकर ज्ञान प्राप्त कर और स्थानकवासी गृहस्थों के दुकड़ों से पोषित होकर संयम के न पकने से संयम से वंचित हो वृण्डीयों में दीक्षित जा हुए थे। क्या वृण्डी आत्माराम जी को भी पुत्रों के नामों ने गंगा स्नान कराके शुद्ध किया था? यदि गंगा स्नान से

हम लोगों ने घासी राम और मुगल राम को गंगा स्नान से छुड़ा कर लिया था । गंगा यमुना के स्नान में शुद्धि मानने वाले पुत्रों लोग जैन नहीं हो सकते हैं क्योंकि पुत्रों मूर्तिपूजकों का सिद्धांत तो गंगादि जल से पाप निवृत्ति नहीं मानता है । फिर न माहूम किस अज्ञानता के कारण गंगा यमुना आदि जल से दोष निवृत्ति रूप अशुद्धि मानने वाले ये लोग अपने आप को जैन कहलाने का हम भरते हैं । सारांश यह निकला कि जो पुत्रों जग गंगा यमुनादि जलाशयों के स्नान में दोष निवृत्ति रूप शुद्धि मानत हैं वे जैन कहलाने का अधिकार नहीं रखते हैं और न ही ऐम गलत विश्वास वाले पुत्रों लोग भगवान् की दृष्टि में जैन हैं ।

८. पुजेरे और सनातन धर्म की मूर्तिमान्यता में विशेष अन्तर ।”

पुजेरे लोगों का जो जडमूर्ति को अरिहन्त भगवान् मानने का मिथ्या विश्वास है, अब इस पर भी थोड़ा सा प्रकाश डालना हम परमावश्यक समझते हैं । जडमूर्ति में अरिहन्त भगवान् का सद् भाव हो ही नहीं सकता है ऐसा तो शुद्ध प्राचीन स्थानकवासी जैनों का विश्वास है ही, पर दण्डी वल्लभ विजय जी के मान्य गुरु दण्डी आत्माराम जी भी इस विषय में ऐसा ही लिखते हैं । देखिए जैनतत्त्वादर्श (पूर्वाह्न) द्वितीय परिच्छेद पृष्ठ ७६ पर आत्माराम जी कुदेव का लक्षण किस प्रकार करते हैं ।

कर सिपा है ।” इस लेख से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गई है कि जड़ मूर्ति भगवान् नहीं है । उस में भगवान् की कल्पना कर लेना यह एक बड़ी भारी भूल है । इस सिद्ध मङ्गमूर्ति को तीर्थकर भगवान् की कल्पना करके मूल कर भी नहीं पूजना चाहिए और न ही उस में भगवान् भावी गुणों की बुद्धि रखनी चाहिए और इसी ग्रंथ (जैम तत्त्वादर्श) में इण्डी आत्मा राम जी लिखते हैं, ‘ कि जो पुरुष जैसा होता है उस की मूर्ति भी वैसी ही होती है । जिस के पास धनुष बद्धर जिह्म, अपमाना और कमण्डल आदि होने वह राग द्वेष काका देव है ।” भाव यह हुआ कि वह देव बुद्धि से मानने योग्य नहीं है । यह आक्षेप इण्डी आत्मा राम जी ने वास्तव में सनातन धर्म के माने हुए देवों और अवतारों पर किया है । यदि इण्डी आत्माराम जो ठण्डे दिव से विचार लेते ता उन्हें बनावटी अपने पीठपागदैवों का पता भी बख जाता । यदि जिह्मादि धारण करना राखी द्वेषी देव के चिह्न है तो मुद्दह अग्निया हागादि से

सुसज्जित दण्डियों के मन्दिरों में जो मूर्तियाँ हैं, वे वीतरागी कैसे हो सकती हैं और उन्हें सुदेव कैसे कहा जा सकता है ? सिर पर मुकट, गले में हार और बढ़िया अगियादि पहनना ये सब भोगी राजा के चिह्न हैं । ऐसे भोग अवस्था भावी, मुकट धारी, बनावटी तीर्थकर देव से मोक्ष फल की इच्छा रखना भी तो एक बड़ी भूल है क्योंकि ये मुकट आदि तो भोगी के चिह्न हैं। ऐसे मनोहर शृंगारों से सुसज्जित कल्पित जैन तीर्थकर मूर्ति भागावस्था को ही प्रकट कर रही है। विचारणीय बात तो यह है कि औरों की त्रिशूलादि चिह्न सयुक्त मूर्ति को तो कुदेव कहा जाता है और अपनी मुकटधारी मूर्ति को सुदेव कहते हैं । यह तो वही बात हुई कि दूसरे की छाछ मिट्टी, तो भी खट्टी, और अपनी छाछ खट्टी तो भी मिट्टी ।” यह मतान्धता नहीं, तो और क्या है ? दण्डी आत्माराम जी ने

“अज्ञान तिमिर भास्कर” में गुरु नानक देव

कबीर जी, दादूदयाल, गुरीव दास, ब्रह्मसमाजी,

और वैदिक आदि मतों की खूब विज्ञा खोजकर मिश्रा की है। ऊपर से तो यह पुत्रिरे लोग मूर्ति पूजक समातनधर्मावलम्बियों को यह कहते हैं कि हम तुम एक ही हैं क्योंकि तुम भी मूर्तिपूजक हो और हम भी मूर्तिपूजक हैं, मीतर से हम लोगों में समातन धर्म के देवों की और मूर्तियों की इस ऊपर मिश्रा की है। इस मिश्रा को यदि समातन-धर्मों लोग समझानेतिमिर भास्कर आदि इन पुत्रों की पुस्तकों में पढ़ें तो उन्हें पता लग सकता है कि ये लोग समझाने समातन धर्म के कितने विरोधी हैं। इन पुत्रिरे लोगों की दृष्टि में हरि, हर, ब्रह्मा राम और कृष्ण आदि की जो मूर्तियाँ समातन मन्दिरों में हैं वे सब कुदैवों की प्रतिमाएँ हैं किन्तु यह पुत्रिरे लोग अपने जैन मन्दिरों में स्थापन की हुई पारस नाथ जैन नाथ आदि के नाम की प्रतिमाओं को ही पूज्य भाव की दृष्टि से देखते हैं। ये पुत्रिरे लोग केवल जैन मूर्तियों की ही पूजा में भास प्राप्ति रूप फल मानते हैं किन्तु समातन मूर्तियों में नहीं मानते। इतना ही नहीं

ब्रह्मिक सनातन मन्दिरों में रही हुई श्री राम चन्द्र
आदि की मूर्तियों को ये लोग कुदेव मानते हैं और
उन के पूजनार्चन आदि को मिथ्यात्व (अज्ञानता)
मानते हैं ।

—०—

दान देते समय :

श्री जैन माडरन स्कूल को भी

याद रखें ॥



६ “दण्डी आत्माराम जी के लेखों द्वारा शिव जी वेश्यागामी और उमा (पार्वती) वेश्या और भी सनातन धर्म के माने हुए देवों की निन्दा ।”

प्रश्न :—यि सनातन धर्म के माने हुए देवों के विरोध की बातें आप अपने पत्रम द्वारा ही कहते हैं या कोई आप के पास पुस्तकें लोगों की ओर से सनातन धर्मियों के देवों की निन्दा और विराधता का प्रमाण भी है ?

उत्तर :—हम जो कुछ कहते हैं सप्रमाण कहते हैं ।

प्रश्न :—अपना फिर बतलाइए सनातन धर्म

के माने हुए देवों को इन दण्डी मतानुयाइयों ने कहा पर कुदेव लिखा है ?

उत्तर:-देखिए दण्डी वल्लभविजय जी के मान्य गुरु दण्डी आत्माराम जी अपने वनाए हुए 'अज्ञान-तिमिर भास्कर' द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ३० पर सनातन धर्म के देवों के विषय में क्या गद् उछालते हैं । उन का लेख है :-

“कि शिव जी, राम, कृष्ण, ब्रह्मा इत्यादि १८ दूषणों से रहित नहीं थे, अर्थात् १८ दूषणों सहित थे । (वे १८ दूषण काम, क्रोध, मोह, और लोभादि हैं ।) दण्डी आत्मा राम जी ने लिखा है, “कि शिव जी कामी थे । वेश्या व परस्त्री गमन भी करते थे । रागी, द्वेषी क्रोधी और अज्ञानी भी थे । इत्यादि

अनेक दूषण शिवजी में थे, इस लिए शिवजी परमेश्वर नहीं थे । लोगों ने उन को यूँ ही ईश्वर मान लिया है ।”

आगे श्री राम चन्द्र जी के विषय में भी लिखा है :-

कि राम चन्द्र जी सीता से भोग करते थे, इस लिए काम से रहित न थे । अर्थात् कामी थे । संग्रामादि करने से राग द्वेष से रहित भी नहीं थे । राज्य करने से त्यागी नहीं थे । शोक, भय, रति, अरति, हास्यादि दुर्गुणों से संयुक्त थे ।” इसी तरह श्री कृष्ण जी को भी दण्डी आत्माराम जी ने

उपरोक्त दोषों से संयुक्त बतलाया है ।

और आगे चलकर दण्डी आत्माराम जी लिखते हैं :-

“कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों को काम ने स्त्रियों के घर का दास बनाया

था ।” सनातन भाइयों को दण्डी वल्लभ विजय जी के मान्य गुरु आत्माराम जी के इन लेखों से अच्छी तरह पता लग गया होगा कि ये लोग सनातन धर्म के माने हुए देवों से और उन की सनातन मन्दिर में स्थापन की हुई मूर्तियों से और सनातन धर्म से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध और प्रेम रखते हैं ।

जिस प्रकार दण्डी वल्लभ विजय जी के मान्य गुरु दण्डी आत्माराम जी ने अपने बनाए हुए “अज्ञान तिमिर भास्कर” में सनातन धर्म के माने हुए देवों को और उन के देवों की बनाई हुई मूर्तियों को कुदेव आदि शब्दों द्वारा निन्दा की

है ठसी प्रकार दृण्डी आत्मा राम जी ने अपने बनाए हुए “जैन सत्त्वादर्श” (उत्तराद) के पृष्ठ ४४८ पर समातन धर्मियों के नामे हुए एक प्रसिद्ध अवतार शिव जी और तमा (पावैती) दोनों के विषय में बहुत मंद उछाला है। महादेव पार्वती के विषय में ऐसे २ गंदे शब्दों का प्रयोग किया है जो समातन धर्मियों को सुनने मात्र से भी पुच्छ दायो है। दृण्डी आत्मा राम जी ने लिखा है :

“कि महादेव एक समय उज्जैन नगर में गया। वहां चंद्र प्रद्योत राजा की एक शिवा नाम की राणी को छोड़कर दूसरी सर्व राणियों के साथ विषय भोग करा, और भी सर्व लोगों की बहुषेटियों को धिगाड़ना शुरू किया। इसी पृष्ठ पर लिखा है “कि महेश ने विद्या बल

से सैंकड़ों ब्राह्मणों की कुमारी कन्याओं को विषय सेवन करके विगाड़ा ।”

“उपरोक्त लेख का यह भाव निकला कि महेश जी विषयी, परस्त्रीगामी और लोगों की बहुवेष्टियों के साथ व्यभिचार करने वाले दुराचारी थे । इसी पृष्ठ पर पार्वती जी के विषय में लिखा है :-

“कि उमा (पार्वती) उज्जैन में रहने वाली एक बड़ी रूपवती वेश्या थी । उस का यह प्रण था कि मुझे अमुक बड़ी संख्या में जो अधिक धन देगा, वही मेरे से विषय रमन रूप प्रेम पोषण कर सकेगा । जो कोई भी उस के कहे मूजब धन देता था, सो उस के पास जाता था ।”

माय यह निश्चय कि इण्डी आत्मा राम जी ने
 उमा (पार्वती) जी को भी सुराचारणी पर पुष्प
 रमन करने वाली बालाक जी (बेरया) बतलाया है।
 भगवान् महावीर स्वामी के प्रमाण हुए पवित्र
 और प्रामाणिक ३२ जैन शास्त्रों में शिव जी
 के विषय में बताया व परजीगामी हुना
 और पार्वती जी का बेरया कर्म कमाना ऐसा
 कोई लेख नहीं है। और हो भी कैसे सकता है
 क्योंकि भगवान् महावीर स्वामी पूर्ण समदृष्टि थे।
 वह किसी का दोष दुखाना और निन्दा करनी
 उचित नहीं समझते थे। भगवान् महावीर स्वामी
 जी का सिद्धान्त तो यह है, कि पाप बुरा है,
 पापी नहीं भवति भगवान् महावीर स्वामी जी ने
 बुरे कर्म की निन्दा की है बुरे कर्म करने वाले
 कर्ता ही नहीं, वास्तव में बात भी यही है। यदि
 कोई बुरा है तो बुरे कर्म से हो है। बुरे कर्म त्याग
 देने पर वही व्यक्ति संसार में एक स्रेष्ठ आत्मा
 कहलाते जाग जाता है। ऐश्वर्य बालमीकि जी,
 सदाना कस्तूरि, और प्रमा चोर (आदि ५०० चोरो के

समूह को साथ लेकर जहा तहा डाक मारता था) ऐसे २ अपराधी जीव भी बुरे कर्म छोड़ कर ससार में यश और कीर्ति के भागी बन चुके हैं। सरकार भी चोर जार पुरुषों का नेक चालचलन का प्रमाण मिलने पर चोर जारों में से उन का नाम निकाल देती है। किसी भी व्यक्ति की निन्दा करना यह एक महा नीच कर्म है। एक स्थान पर कहा भी है, “कि पक्षियों में काग चाण्डाल है, जो जिस घड़े में पानी पीता है, उसी में पीठ फेर कर अपना मल डाल देता है। पशुओं में गधा चाण्डाल कहा है, जिस को गंगा यमुनादि में कही पर भी स्नान कराया जाए, फिर भी वह रेत में ही लेट कर प्रसन्न होता है। उस अज्ञानी गधे को अपने शरीर तक की शुद्धि का भान नहीं होता है। तीसरा चाण्डाल है जो मुनि होकर क्रोध करे और समाज में, जाति में, ब्राह्मणों में जहा तहां फूट डाले। अर्थात् मनुष्य जाति के अन्तर्गत वैर विरोध पैदा करे।” साधु का धर्म तो यही है कि फटे हुआ को मिलावे। और सर्व चाण्डालों का चाण्डाल वह है

जो किसी व्यक्ति की निन्दा करता है । बाण्डाब (लौकिक परिभाषा में) मंगी का कहते हैं । मंगी मक को हाथ से नहीं उठाता है किसी झाड़ू या अस्त्र द्वारा उठाता है, किन्तु निन्दा करने बाबा वृत्तरों की निन्दा करने निन्दा रूपी गंदमी अपनी जिह्वा से उठाता है । इसी बिण् भगवान् महावीर स्वामी जी ने अपने मुख से ऋणमात्र रूप शास्त्रों में किसी भी व्यक्ति की निन्दा नहीं की है । महादेव पार्वती आदि सनातन धर्म के देवों की निन्दा प्राचीन स्थानकवासों जैनों के ग्रामाधिक ३९ शास्त्रों में कही भी नहीं आई है । न मासूम दण्डी आत्मा राम जी ने ऐसी निन्दा करने में क्या काम समझा है । यह बात तो सनातन आई दण्डी वल्लभ चित्रय जी आदि पुत्रेरे लोगों से ही मासूम कर सकते हैं ।

विशेष नोट :-यहाँ पर जो 'अज्ञान तिमिर भास्कर' और 'जैन तत्त्वादों' के लेख लिखे गए हैं वे मति कल्पित नहीं हैं । यदि किसी व्यक्ति को शंका हो तो उपरोक्त पुस्तकें पढ़कर अपनी तस्ती कर सकता है ।

१०. दण्डी आत्माराम जी मन्त्रवादी ।”

किंचित मात्र हम इस बात का भी दिग्दर्शन करा देना उचित समझते हैं कि दण्डी आत्मा राम जी ने जो शुद्ध प्राचीन स्थानकवासी जैनों को दण्डी दीक्षा धारण करने के बाद मूर्तिपूजक पुजेरे बनाए हैं, वह उन की कोई आत्मशक्ति या त्याग की आकर्षणता की शक्ति नहीं थी, किन्तु भोली जनता को अनंक प्रकार के मन्त्र और धन आदि के प्रलोभन देकर शुद्ध धर्म से भ्रष्ट करके मिथ्यात्व में डाला है । यदि आप ने इस का प्रमाण देखना हो तो आप को “जैनाचार्य श्री आत्मा नन्द जी जैन शताब्दी स्मारक ग्रंथ से स्पष्ट रूप से मिल सकता है ।

(इस के प्रमाण के लिए आप उपरोक्त पुस्तक के हिन्दी विभाग का १९ पृष्ठ देखें ।)

एक रात चन्द्र जी आचार्य पति के द्वय का शोषक है "मन्त्रवादी जी मद्रिगवानम्ब सूरि" पति राज चन्द्र आचार्य जी शताब्दि स्मारक ग्रंथ में कुछ केष वसा चाहिते थे किन्तु उन के विचार में यह बात निरिक्त न हा सकी कि यह जी आदमाराम जी के विषय में क्या केष लिये । बहुत समय के मनन के पश्चात् पति जी इस भाव का बहूँ कि यह विजयामम्ब जी के विषय में मन्त्र वादी राज का केष किन्तु और पति जी ने किया है -

"कि श्री विजयानन्द सूरि के शिष्य शान्ति विजय जी के साथ मैं ने कुछ वर्ष रहकर जैन शास्त्रों का अध्ययन किया था । शान्ति विजय जी यद्यपि (ग्रन्थ) धन रखते थे, किन्तु फिर भी विरक्त त्यागी थे, क्योंकि वह ज्यों ही

धन आता था, त्यों ही उस को खर्च कर दिया करते थे, किन्तु लोगों के पास जमा नहीं कराते थे, और न ही ब्याज लेते थे । बहुत सारे यति या श्रावक लोग जो उन के पास आते थे, कुछ न कुछ लेकर ही जाते थे ।

उन शान्ति विजय जी की मेरे पर बहुत कृपा थी । एक दिन मैं ने उन से प्रश्न किया -

कि आपने रोगापहारिणी, अपराजिता श्री सम्पादिनी आदि विद्याएं कहां से सीखी हैं ?” उन्होंने ने उत्तर दिया .- “कि मेरे गुरु श्री आत्मा राम जी ने एक यति से ये विद्याएं ली थीं और उन से मैं ने भी सीख ली थी ।” इस लिए मैं श्री

आत्मा राम जी के मन्त्रवादी होने के विषय में ही
 शेष निम्न । ऐसा निश्चय करके यति जी मन्त्रवाद
 का शेष निश्चय हुए शेष के ध्यस्त में आकर
 लिखते हैं :- “कि आत्माराम जी के
 दिग्भिजयी होने का मूल कारण एक
 मन्त्रवाद ही है” अर्थात् जो कुछ भी श्री
 आत्मा राम जी ने लोगों को अपने अनुयायी
 बनाने में सफलता प्राप्त की है वह मन्त्र प्रभाव का
 ही अस्तर था । ‘मन्त्रवादी श्रीमद् विजया मन्त्र
 मुरि’ शीर्षक के श्रुति से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट
 हो गई है कि वृन्दी आत्मा राम जी ने स्थानक
 वासी मद्रमनता को अही तही बहका कर जो
 अपने मतानुयायी बनाया है यह इनके तप, गप
 संयम आदि कठिन क्रिया और आत्महाति का
 प्रभाव नहीं था अपितु रोगापहारिणी, अपराजिता
 और श्री सम्पादिनी आदि विद्याओं का ही अस्तर
 था । रोगापहारिणी विद्या से मतलब है कि यह रोग
 दूर करने की रोगापहारिणी विद्या से वैदिक भी

करते होंगे । श्री सम्पादिनी विद्या से मतलब है कि वह धन कमाने की श्री सम्पादिनी विद्या से धन भी कमाते होंगे क्योंकि श्री सम्पादिनी विद्या उसी को कहते हैं जिस के द्वारा धनसम्पादन किया जाए अर्थात् जोड़ा जाए । तीसरी अपराजिता विद्या का मतलब है अपने आप को अजित बना लेना अर्थात् स्वयं को कोई भी न जीत सके । आत्मशक्ति वाली सच्ची आत्माएँ तो स्वयं इतनी बलवान होती हैं, कि उन पर कोई भी तुच्छ व्यक्ति अपना प्रभाव डालकर उन्हें जीत नहीं सकता । जहाँ आत्मशक्ति की आवश्यकता थी, वहाँ पर भी अपराजिता विद्या से ही काम लिया जाता होगा । किया भी क्या जाए, आत्मशक्ति तो तप, जप, संयम और सत्य आदि सद्गुणों द्वारा ही प्राप्त होती है । अगर जीवात्मा में ये उक्त गुण न हों, तो आत्मीय दिव्य शक्ति के दर्शन कैसे हो सकते हैं । जिस व्यक्ति के गुरु श्री सम्पादिनी अर्थात् धन कमाने की विद्या की आवश्यकता रखते हों, यदि उन के शिष्य श्री शान्ति विजय जी

में अपने पास धन रख लिया, तो क्या कोई आश्चर्य की बात है ! इस बात में तो कोई आश्चर्य नहीं है किंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि इन्हीं आत्मा राम जी के शिष्य शान्ति विजय जी धन रखने पर भी विरक्त त्यागी बतलाए गए हैं । क्या सच्चे जैन साधुओं के आदर्श त्याग का यही नमूना है कि धन रखने पर भी विरक्त त्यागी कहलाए । नहीं नहीं भगवान् महावीर स्वामी जी ने तो शास्त्र दशबैकालिक के चतुर्थ अध्याय में सच्चे जैन साधु के पंचम महाव्रत अपरिग्रह का कथन करते हुए उरमाया है “किं अल्प वा बहुत सूक्ष्म वा मूक सचिठ वा अचिठ अथादि किसी प्रकार के भी परिग्रह का जैन साधु संग्रह न करे” इस दशबैकालिक सूत्र के अर्थ से स्पष्टतया सिद्ध हो गया है कि जैन साधु मोला, चांदी ताम्बरादि का संग्रह न करे । यदि संग्रह करे, तो वह सच्चा जैन साधु कहलाने का अधिकारी नहीं है । भगवान् महावीर स्वामी जी ने शास्त्र उत्तराख्ययन जी के १५ अध्याय की गाथा आठवीं में मन्त्र मन्त्र के

न करने वाले को ही साधु कहा है । गाथा :

“मन्तं मूलं विविहं वेज्जचिन्तं,
वमन विरेयण धूमणेत्त सिणाणं,
आ उरे सरणं, तिगिच्छियं च,
तं परित्राय परिन्वए स भिक्खू ।”

इस गाथा का भावार्थ है, “कि मन्त्र, जड़ी, बूटी तथा अनेक प्रकार के वैद्यक उपचारों को जान कर काम में लाना, जुलाब देना, वमन कराना, धूप देना, आखों के लिए अजन बनाना, रोग आने से हाय २ आदि शब्द पुकारना, वैद्यक सीखना, आदि क्रियाएँ साधु के लिए योग्य नहीं हैं। इस लिए जो उपरोक्त क्रियाओं का त्याग करता है, वही सच्चा साधु है । इस गाथा के भाव से भी यह बात स्पष्ट हो गई है कि मन्त्र और चिकित्सादि विद्याओं को सीख कर चिकित्सादि करने वाला सच्चा साधु नहीं है । शास्त्र का यह प्रमाण होने पर भी फिर मन्त्र जन्त्र करने वाले को गुरु माना जाए,

यह इठ नहीं तो और क्या है।

जो पुत्रिरे जोग ऐसा कहा करते हैं कि सुधर्मा स्वामी जी के बारे में छात्रों में पाठ बकता है

मन्त्र पद्यादि" अर्थात् सुधर्मा स्वामी जी मन्त्र ज्ञान में प्रधान थे। श्री सुधर्मा स्वामी जी तो आगम बिहारी थे। कण्ठ कण्ठी आत्मा राम जी भी चार ज्ञान के धनी था १४ पूर्व के पाठी आगमबिहारी थे। कण्ठी आत्मा राम जी की तरह श्री सुधर्मा स्वामी जी ने श्री तन्पादिनी अचरामिता भार्गविद्याओं का सहारा थोड़ा ही लिया था। इन्हीं ने (सुधर्मा स्वामी जी) का अपने प्रबल तप, अप संयम और सत्य व्रत के आधार पर ही धर्मप्रचार करके संसार को सच्चे मार्ग पर लमाया था किसी मन्त्र पद्यादि द्वारा नहीं।

हमारा कर्तव्य तो केवल सच्चाई को ही दिग्दर्शन कराना है "जैसे जो जैसा करेगा वैसा भरेगा" यह जैन सिद्धान्त का तो निर्बन्ध ही है।

इति सुमन् श्री रस्तु करयान मस्तु ॐ शान्तिः शान्तिः सत्यासत्यनिर्बन्ध पुस्तिका समाप्त ॥

“मूर्तिवाद चैत्यवाद के बाद का है

और मूल सूत्रों में मूर्तिपूजा विधान नहीं है”
उपरोक्त विषय पर प० वेचर दास जी का लेख ॥

प० वेचर दास जी जो कि श्वे मूर्तिपूजक
संप्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान हैं । तथा जिन्होंने ने
भगवत्यादि अनेक आगमों का सुचारु रूप से
अध्ययन, मनन एवं संपादन किया है । तथा जिन
के पाम रह कर कितनेक जैन साधुओं ने जैन-
गमाध्ययन किया है—उन्होंने ने एक पुस्तक गुजराती
भाषा में “जैन साहित्य में विकार थवाथी थयेस्ती
हानियो ” नाम से लिखी है । तथा जिस का कि
हिन्दी अनुवाद श्री मान् तिलक विजय जी ने
“जैन साहित्य में विकार”के नाम से लिख प्रकाशित
करवाया है । उस पुस्तक में से कुछ आशिक भाव
पाठकों के सामने मननार्थ रखे जाते हैं । आशा है
कि पाठकगण शांत हृदय से इन्हें पढ़कर निर्णय
दृष्टि से पक्ष पात का परित्याग करके, सत्य को

धारण कर अपने ज्ञेय के भागी बनेंगे ।

प० जी ने जम्बूद्वीप प्रसवति आदि शास्त्रों के प्रमाण देकर बहुत ही सरल शब्दों में बतलाया है कि चैत्य शब्द वास्तव में तीर्थकर, गणधर और साधुओं के मृतक देह संस्कारित मृमि मामपर बने हुए स्मारक चिन्हों से सम्बन्ध रखता है । प० जी लिखते हैं कि हमारे पूर्वजों ने चैत्यों (समारकों) को पूजन के लिये नहीं बनाया था बल्कि उन मरण वाले महापुरुषों की यादगार के तौर पर निर्मात्र किये थे । परन्तु बाद में इन की पूजा प्रारंभ हो गई और वह आज तक चली आ रही है । प० जी का मत है कि मूर्ति का मूल इतिहास चैत्य से ही प्रारंभ होता है । और मूर्ति का प्रथम आकार भी चैत्य ही है । वर्तमान समय में जो मूर्तियाँ देख पड़ती हैं वे उत्क्रान्ति की दृष्टि से विकास को प्राप्त हुई हैं । यह एक प्रकार की शिवरक्ता का नमूना है । जो मूर्तियाँ श्री गैत्रियों के अधिकार में हैं उन का सौन्दर्य और शिल्प कला से असाधारण निकट से नज़र-आँखें लगाकर

तथा इसी प्रकार के अशिष्ट, असंगत और अशास्त्रीय आचरण के द्वारा नष्ट भूट कर डाला है । तथापि वे मूर्ति पूजने का दावा करते हैं । मैं इसे धर्म दभ और ठोंग समझता हूँ ।

अपने पूज्य देव की मूर्ति को पुतली के समान अपनी इच्छानुसार नाच नचाते हुए भी उस की पूजना का सौभाग्य इसी समाज ने प्राप्त किया है । अपने इस समाज की ऐसी स्थिति देख कर मूर्तिपूजक के तौर पर मुझे भी बड़ा दुःख होता है । प० जो आगे चलकर लिखते हैं कि चैत्य यादगिरी (Memorials) के लिये ही बनाये गये थे । समय पाकर वे पूजे जाने लगे । धीरे २ उन स्थानों में 'देवकुलिकाएँ' होने लगीं । उन में चरण पादुकाएँ स्थापित होने लगी और बाद में भक्तजनों के भक्ति आवेश से उन्हीं स्थानों में बड़े २ देवालय एव बड़ी २ प्रतिमाएँ भी विराजित होने लगीं । यह स्थिति इतने मात्र से ही न अटकी परन्तु अब तो गाव २ में और गाँव में भी मोहल्ले २ में वैसे अनेक देवालय बन गये हैं । और बनते जा रहे हैं ।

ज्यों २ चैत्य के आकार बढ़ते गये त्यों २ उसके अर्थ भी बढ़ते गये। प्रारम्भिक चैत्य द्वारम् अन्वये या अर्थात् केवल स्मारकों का वाङ्गार रूप था।

पं० जी चैत्य द्वारम् के अर्थ इस प्रकार लिखते हैं। (१) चिता पर चिता हुआ स्मारक चिन्ह (२) चिता की गण्ड (३) चिता ऊपर का पायागण्ड। (४) शला या शिला केन्द्र। (५) चिता पर का पीपल या तुलसी आदि का पवित्र पौधा (६) चिता पर चिने हुए स्मारक के पास का पट्ट स्थान वा होम कुण्ड। (७) चिता के ऊपर का देहरी के आकार का चिताय स्तूप, साधारण देहरी चिता पर की पावुकावली देहरी या चरण पावुका, चिता पर का पैवालय।

प्रिय सज्जनों! पुस्तक लेखक के उपराक्त लेखों से यह बात स्पष्ट रूप में सिद्ध हो गई है कि वास्तव में मूर्तिपूजा कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है।

उपरोक्त लेख में मृतक स्थान पर स्मृति के लिये बनाये गये स्मारकों को कि केवल वाङ्गार के लिये ही बनाये गये थे। उन्हें आदिस्ते २ अहानी

जीव पूजने लग गये । जिस का भयंकर परिणाम यह हुआ कि उन्हीं स्मारकों के स्थान में मूर्तियाँ घड़े २ कर जहाँ तहाँ रख दी गईं और वे पूजी जाने लगीं । साराश यह निकला कि मूर्तिपूजा कोई शास्त्रोक्त नहीं है । एक विकृत प्रथा है ।

मूर्ति विरोध विषय में तेरहवीं शताब्दी के एक दिगम्बर पं० श्री आशाधर जी ने ३६ सांगारे धर्माश्रित में पृष्ठ ४३० पर लिखा है कि 'यह पंचम काल धिक्कार का पात्र है । क्योंकि इस काल में शास्त्राभ्यासियों का भी मंदिर या मूर्तियों के सिवा निर्वह नहीं होता ।'

प्रिय बन्धुओ ! उपरोक्त लेख में श्रीमान् आशाधर जी ने मूर्तिमान्यता के विषय में कितना दुःख प्रगट किया है । इस लेख से साफ यही भाव प्रगट होता है कि मूर्तिपूजा शास्त्राभ्यासी ज्ञानियों का विषय नहीं है । यह तो अज्ञानी जीवों की ही बात लीला है ।

पं० जी का लेख है कि मूर्तिवाद चैत्यवाद के वाद का है । यानि उसे चैत्यवाद जितना प्राचीन

मानने के लिये हमारे पास एक भी ऐसा मजबूत प्रमाण नहीं है जो शास्त्रीय सूत्रविधि विषयक या ऐतिहासिक हो। यों तो हम और हमारे कुम्हारबाप भी मूर्तिबाद को अमादि ठहराने तथा महावीर मापित बठकाने का विगुप्त बजाने के समान बातें किया करते हैं। परन्तु जब हम बातों को सिद्ध करने के लिये कोई ऐतिहासिक प्रमाण या अंग सूत्रों का विधि वाक्य मांगा जाता है तब वे बगलें होकरने लगते हैं। और अपनी प्रवाह वाली दाह को आगे कर अपने बचाव के लिये कुशुर्गों को सामने रखते हैं। मैं ने बहुत ही कोशिश की तथापि परम्परा और “बाबा वाक्य प्रमाण” के सिवा मूर्तिबाद को स्थापित करने के सम्बन्ध में मुझे एक भी प्रमाण या विधि विधान नहीं मिला। मैं यह बात हिम्मत पूर्वक कह सकता हूँ कि मैं ने मुनियों या आचर्यों के लिये ऐव दर्शन या ऐव पूजन का विधान किसी भी अंग सूत्र में नहीं देखा। इतना ही नहीं बल्कि भगवती आदि सूत्रों में कई एक आचर्यों को कथाएँ आती हैं उन में

उन की चर्या का भी उल्लेख है। परन्तु उस में एक भी शब्द ऐसा मालूम नहीं होता कि जिस के आधार से हम अपनी उपस्थित की हुई देव पूजन और तदाश्रित देव द्रव्य की मान्यता को घड़ी भर के लिये भी टिका सकें। मैं अपने समाज के कुल गुरुओं से नम्रता पूर्वक यह प्रार्थना करता हू कि यदि वे मुझे इस विषय का एक भी प्रमाण या प्राचीन विधान विधि वाक्य बतलायेंगे तो मैं उन का विशेष ऋणि हूंगा।

प्रिय पाठको ! इस उपरोक्त लेख से आप को पूर्णतया पता चल गया होगा कि पण्डित जी ने किस सिंह गर्जना के साथ बतलाया है कि अग शास्त्रों में साधु और श्रावक के लिये मूर्ति दर्शन एवं पूजा का विधान नहीं है। वस अब भी यदि श्वेताम्बर मूर्तिपूजक लोग शास्त्रों द्वारा मूर्तिपूजा सिद्ध करने की मिथ्या चेष्टा करें तो यह उन की बाल हठ ही मानी जायगी। बुद्धिमान् जनता को यह सूचित किया जाता है कि इन मूर्तिपूजक लोगों के धोखे में आकर कभी भी मूर्तिपूजा रूप

मिथ्यात्व का सेवन न करें। मूर्तिपूजा शास्त्रीक होती थी वं भी के कुछ मुंढरों के प्रति किये गये वैदिक का कार्य न कोई शास्त्रोक्त प्रमाण से उल्लेख देने की चेष्टा अवश्य करता किन्तु करें किन्ती से ? जब शास्त्री में मूर्तिपूजा का विधान है ही नहीं। जिस के पास एकमे ही नहीं है तो वह एकमे के मुगलान के समय पर एकमे को मुगलान करें तो कहाँ से करे। सिवा इधर उधर बगलें होकर के धोर क्या करे ? यही बात यही घर मूर्तिपूजकों के विषय में भी समझ लेना।

मूर्तिपूजक नामों ने जो वीतराग परिग्रह परित्यागी होकर देवों की बुद्धिहीन मूर्तिपूजा द्वारा की है इस बात की वृत्ति के विषय में इसी पुस्तक में से थोड़ा सा धर्म ज्ञान आता है।

महती जी, (मूर्तिपूजकों का धर्मस्थान) में वर्णित सरकार ने ७ दि० सम्प्रदाय के किये पूजा करने का समय नियत किया हुआ है। तदनुसार ७ ताम्बरों की पूजा हुए बाद दिगाम्बर भाई पधारते हैं। धोर के मूर्ति पर अगाने हुए वह तथा ओठा

सुवरुुु की की हुई पूजा को रहु करतुतु हूँ । फलर इनुदुर
 पूजुतु वननतु की आशा सुतु खुग हुतुतु हुप हमारु
 शुतुतुतुवरुु की पूजा की वारी आनतु पर वतु उस
 सुतुतुतु पर फलर सुतु ऑकु आर टीका आदलु लगा दतुतु
 हूँ । इस प्रकर की वलधल कलरुतु वलद ही वतु दुनुु
 भाई (शुवुु दलु) अणुनी २ की हुई पूजा को पूजा
 रुप मानतुतु हूँ । परनुतु मूँ तु इस रीतल को तीरुथकर
 की मजाक आर आशातनल कुतुवल अणुतु कुऑ भी
 नहुीं मानतुल । यह तु संसार मूँ दु सुी वललु भदुर
 पुरुष की ऑ सुथलतल हुती हूँ उसी दशा मतु हम नतु
 अणुनतु वीतरलग दतुव को पहुऑ दललल हूँ । यह हमारु
 कलतनी कीमतुी प्रभुभक्तल हूँ ? ऐसी भक्तल तु इनुदुर
 को भी प्राप्त नहुीं हु सकतुी ? मूँ मानतुल हु कल
 यदल इस सुतुतुतु मूँ ऑतनुतुतुल हुती तु यह सुवुतु ही
 अदललत मतु ऑकर अणुनी कदरुथनीतु सुथलतल सुतु मुक्त
 हुनु की अणील कलरुतु वलनल कदलपल नहुी रहती ।
 यह सुतुतुतुपूजा नहुी वलुक उस कल पैशलऑक
 सुवरुप हूँ ।

इस ऊपर कथन कलरुतु हुप प० ऑी कु लुऑ सुतु

इन अङ्क मूर्ति पूजक मैनो की प्रभु भक्ति का कितना सुन्दर चित्र स्पष्ट रूप से प्रतीत हो जाता है। जिस अज्ञानता सूचक भाष्य भट्टा से ये लोग उन अपना मान्य मूर्तियों के वेश धाते हैं वह घटना बड़ी विचारनीय है कि जिन की एक व्यक्ति धारक पूर्ण धाते निकाल बैठा है फिर अपनी मान्यतानुसार नई धाते बढ़ा कर उन्हें पूजता है। क्या यही सही प्रभु भक्ति है? कि अपने माने हुए भगवान् की धाते तक निकाल लो माये। ऐसी सेवा तो सृष्टि रूप भगवान् को बहुत ही महंगी पड़ती होगी। वास्तव में सृष्टि चेतनता रहित होने के कारण नहीं जा सकती नहीं तो मछों के द्वारा की हुई अपनी पुर्नजा का निर्णय सरकार द्वारा करा हो जाती।

चैत्य वासियों को उत्पत्ति बीरात् ८८२ वर्ष में हुई इस से पहले चैत्य वासियों की सम्प्रदाय नहीं थी। बीरात् ८८२ वर्ष में ब्रह्मदीपिका सम्प्रदाय हुई। बीरात् १४६४ वर्ष में बड़ गच्छ की स्थापना हुई। विक्रमात् १२०४ वर्ष में खरतर सम्प्रदाय का जन्म हुआ। विक्रमात् १२८५ वर्ष में तवागच्छ की नींव

रक्खी गई। प्रमाण के लिये हिन्दी अनुवाद जैन साहित्य में विकार पुस्तक का पृष्ठ ११९ देखो।

मूर्तिपूजक जो इस बात का दावा करते हैं कि हम प्राचीन हैं यह दावा भी उनका मिथ्या ही है। उपरोक्त लेख से ८८२ के वर्ष के बाद में ही इन तमाम गच्छों का होना सिद्ध होता है। इस लिये इन पुजेरे लोगों की मूर्तिपूजा का अनादि या भरत आदि के समय से प्रचलित होना बिलकुल सिद्ध नहीं हो सकता है। इसी पुस्तक के पृष्ठ १० पर चैत्यवाद नामक दूसरे स्तम्भ में अनुवादक जी लिखते हैं कि हमारा समाज मूर्ति के ही नाम से विदेशी अदालतों में जाकर समाज की अतुल्य धन सम्पत्ति का तगार कर रहा है।

वीतराग सन्यासी फकीर की प्रतिमा को जैसे किसी एक बालक को गहनों से लाल दिया जाता है उसी प्रकार आभूषणों से शृंगारित कर उस की शक्ति में वृद्धि की समझता है। और परम योगी वर्धमान या इतर किसी वीतरागी की मूर्ति को विदेशी पोशाक जाकिट कातर वगैरह से सुसज्जित

कर उस का खिलौने जितना भी सौन्दर्य मह प्रह करके अपने मानव समाज की संकलता समझ रहा है। मैं इसे धर्मदम्भ और डोंग समझता हूँ। अमुबाबू जी के इस लेख से यह बात मझी भाँति स्पष्ट हो जाती है कि वास्तव में बीतरागी परिग्रह परित्यागी तीर्थंकर देव की मूर्ति बनाकर और उसे गृ गारित कर अपने मनों की विषय पूरति के लिये एक गुड़िया बना लेना, यह उन महापुरुषों की एक महान अभिनय और आशातमा करना है बुद्धिमान पुरुषों को मूक कर भी उपरोक्त अहामता सूचक क्रियाएँ नहीं अपनानी चाहिये।

पं० जी का यह भी लेख है कि अभी तक ऐसा एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ जिस से यह प्रमाणित हो सके कि जो वर्तमान के समय मूर्तिवाद वर्तमान के समान एक मार्ग स्वरूप प्रचलित हुआ हो। तथा बीर निर्वाण से ९८० वर्ष में संकलित हुआ साहित्य भी इस विषय में किसी प्रकार का विधायक प्रकाश नहीं दाखता कि जो मूर्तिवाद के साथ प्रचलित विशेष संबंध—

रखता हो, इतने सरल सत्य को अवश्य समझ सकते हैं कि वीर निर्वाण से ९८० वर्ष तक के समय में एक प्रवाही मार्ग रूप में मूर्तिवाद की उत्कट गंध तक मालूम नहीं होती।

पं० जी के इस ऊपर कथन किये गये लेख से साफ २ रूख से प्रगट हो गया है कि श्री वर्द्धमान के समय में मूर्तिवाद जनों में नहीं था। यदि होता तो पं० जी ऐसा कभी न लिखते कि अभी तक ऐसा (मूर्तिवाद पोषक) एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ। पं० जी के लेख से यह बात भी स्पष्टतया सिद्ध हो गई कि वीर निर्वाण से ९८० वर्ष में लिखे गये जो जैन शास्त्र हैं उनमें मूर्तिवाद के विधान की गंध तक नहीं है। फिर भी नमालूम जडोपासक जैन लोग मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है या अनादि प्राचीन है ऐसा मिथ्या कोलाहल मचाकर भद्र जनता को पापाणोपासक बनाने की मिथ्या चेष्टा क्यों करते हैं।

पं० जी सप्रमाण बल पूर्वक ऊपर बतला चुके हैं कि अग सूत्रों में मूर्तिवाद विलकुल नहीं है।

जो बात जंग सुत्रों के मूल पाठों में नहीं है वह जंग के उपागों, निरुक्तियों भाष्यों चूड़ियों जव चूड़ियों और टीकाओं में कहाँ से हो सकती है। उपाग निरुक्तियाँ भाष्य चूड़ियाँ, जवचूड़ियाँ और टीकाएँ इसी लिये लिखी जाती हैं कि किसी भी तरह मूल का जर्घ स्पष्ट हो जाय। परन्तु मूल में रही हुई किसी तरह की अपूर्वता को पूर्य करने के लिये मूल पर भाष्य चूड़ियाँ आदि नहीं की जाती।

प्रिय पाठक गहों ऊपर अधम लिये गये जज का भाव यह निकला कि जंग सुत्रों में जब मूर्ति पूजा नहीं है तो जंग सुत्रों के मूल का स्पष्ट करने वाले उपाग सुत्र या निरुक्तियाँ भाष्य चूड़ियाँ जवचूड़ियाँ टीकाएँ आदि से भी मूर्तिपूजा लिद्ध नहीं हो सकती। सबाब वेदा हाता है कि किर यह मूर्तिपूजा जेनो में कहाँ से आई? इस का जबाब है कि मूर्तिपूजकों ने अपने मन चहन्त ग्रन्थ बनाकर उन में मूर्तिवाद पुसेइ दिया। जिस का जसकर परिणाम यह हुआ कि आज बहुत सारी

अनभिज्ञ मनुष्य जाति जडोपास्य की अनन्य भक्त बनकर मिथ्यात्व कापोषण कर रही है । यही कारण है कि प्राचीन शुद्ध श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन अगसूत्र विरुद्ध भाष्य चूर्णियादि को प्रामाणिकता न देकर केवल ३२ सूत्रों को ही प्रामाणिक मानते हैं । इन का पापाणोयासना से बचे रहने का मुख्य कारण भी प्रामाणिक ३२ सूत्रों की मान्यता ही है ।

पं० जी आगे चलकर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के साधु समाज के लिये लिखते हैं कि ये लोग अपने भक्त श्रावकों का सट्टा करने की सलाह देते हुये, सट्टा करने के लिये दूसरे गांव भेजते हुए, और लाटरी या सट्टे में भक्त जनों को लाभ प्राप्त हो, इस लिये स्वयं जाप करते हुए कई एक मुनियों को मैं ने प्रत्यक्ष देखा है । जिन्हें सन्तान न होती हो ऐसी स्त्रियों पर तो गुरु जी के हलके हाथ से वासक्षेप पड़ता हुआ आज कल भी सब अपनी नजर से देखते हैं । यह वासक्षेप भभूति का भाई

है। पालिताना और अहमदाबाद जैसे साधुओं के बसाये गये स्थानों में इस रिवाज का अनुभव हमारा सुशक्य है।

और भी मूर्तिपूजक साधुओं के विषय में उपरोक्त पुस्तक में लिखा है कि धार्मिक समय में मृतक के बाद पूजा पढ़ाना पूजा की सामग्री रखना स्नानपढ़ाने और बठारें महोदत्त करने की जो प्रथा चल रही है। यह चैत्य वास्तियों की ही प्रकृति का परिणाम है। वर्तमान में जब कहीं भगवती मूर्ति या कल्प मूर्ति पड़ा जाता है। तब भावकों को अपनी जबमें हाथ डालना पड़ता है यह बात पाठक भली भाँति जानते हैं। हमारी ही इतना सुधार हुआ है कि गुरु जी सुले तौर से उस द्रव्य को नहीं छेते। जिस प्रकार विवाह में सींठने गाये जाते हैं वैसे ही ब्रह्मण्य में गुरु जी ने जोड़ये सोनाना पूठा अमें क्यां थी लाविये” इत्यादि मधुर श्रुति से आरम्भ

गुरु जी की मज़ाक उड़ाती हैं। यह रीति निन्दनीय है। और यह चैत्य वासियों की ही प्रथा है। अतः अनाचरणीय है। आगे चल कर लिखा है। जहा साधुओं के लिये रसोड़े खुलते हों। विहार में मुनियों के लिये ही गाड़ी व रसोइया साथ भेजा जाता हो वहां फिर भिक्षा की निर्दोषता की बात हो क्या कहनी? (इसी का नाम तो पंचम काल है) वर्तमान समय में इन रीतियों की विद्यमानता के लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह सब जगह प्रचलित है।

श्री हरिभद्र सूरि जी भी सम्बोध प्रकरण ग्रंथ पृष्ठ सं० २-१३-१८ में लिखते हैं कि ये लोग चैत्य में और मठ में रहते हैं। पूजा करने का आरम्भ करते हैं। अपने लिये देव द्रव्य का उपयोग करते हैं। जिन मन्दिर और शालाएँ चिनवाते हैं। और भभूती ढालते हैं। रंग विरंगे सुगन्धित वस्त्र पहनते हैं। स्त्रियों के समक्ष गाते हैं।

साधवियों द्वारा लाये हुए पदार्थ खाते हैं। तीर्थ पन्डों के समान अधर्म से धन का सचय

करते हैं । सचित्त पानी का उपयोग करते हैं । छोप नहीं करते । स्वयं झट हाते हुए भी दूसरों को आलोचना देते हैं । धाड़ी तो कपाधि की भी पहिन्ना नहीं करते । स्नान करते हैं । तैल लगाते हैं और शृंगार करते हैं । भिषों का प्रसंग रखते हैं । अपने हीनाचार वाले मृतक शुद्धों की दाहस्थली पर पीठ चुनवाते हैं । मात्र भिषों के समक्ष भी वे व्याख्यात देते हैं । और साध्वियों मात्र पुरुषों के सामने व्याख्यात देती हैं । ऋषि विद्वत् करते हैं । प्रवचन के बहाने विद्वत् करते हैं । मुग्ध माने जनों को कगते हैं । त्रिम प्रतिमाओं को बिचते हैं । और खरीदते हैं । बेचक करते हैं । पत्र, मंत्र ताबीज और गन्डा इत्यादि करते हैं । प्रवचन सुनाकर गृहस्थों से धन की आज्ञा रखते हैं । वे जाग विशेषतर भिषों को ही उपदेश देत हैं । श्री हरिभद्र जी जन्त में सिद्धते हैं कि वे साधु नहीं किन्तु पेट भरने वाले पेटू हैं ।

यद्यपि इन चैत्य वासियों की पतित क्रियाओं को श्री हरिभद्र जी द्वारा सिद्धा हुआ जैसा बहुत

बड़ा है उस में से यहा पर थोड़ी सी ही बातें लिखी हैं। यदि चैत्य वासियों में ऐसी पतिता चरण की क्रियाएँ पाई जाती हैं, तभी तो श्री हरिभद्र सूरि जी ने दुःख के साथ ऐसा लिखा है। बस इस में और कोई नई टीका टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। पतिताचारी चैत्य-वासियों की आचार भ्रष्टता के लिये उपरोक्त सूरि जी का लेख ही पर्याप्त है।

दुःख के साथ हमें तो इतना ही लिखना है कि जिनके साथ बिहार में रसोईखाना, रसोइया या भक्त लोग साथ ही रहकर रसोई बनाते जाएँ और अपने मान्य गुरुओं को सदोष आहार खिलाते जाएँ फिर भी वे सच्चे भक्त होने का दावा करें और गुरु जी अपने निमित्त की हुई रसोई खाकर भी सच्चे साधुपन का अपने में झूठा दम करें तो यह कितनी दुःसाहसकी बात है। वासक्षेप और भभूतो का डालना और जिन प्रतिमाओं का वेचना, अपने निमित्त बिहार में की गई रसोई का लेना, ऊपर कही हुई ये तमाम बातें चैत्य

वासियों व वृद्धियों के सम्भार ही पार्ई जाती है । शुद्ध येताम्बर स्वामक वासी जैन ताशु जो कि बेठमोपासक है । वे इन क्रियाओं से अपने आप को विरक्त रखते हैं ।

आगम वाचनवाद के विषय में वं० जी ने जो लिखा है उस में से कुछ अंश पाठक जनों के स्मरणार्थ यहाँ पर दिया जाता है । वं० जी का कथन है कि चैत्य वासियों में से कितनेक व्यक्तियों ने यह शुद्धार ठाढ़ थी कि आबकों के समस्त सुख विचार प्रगट न करने चाहिये । अर्थात् जैसे प्रायणों ने वेद का अधिकार अपने लिये ही रख कर दूसरों का इस के अनाधिकारो छूराकर अपनी सत्ता जमाई थी । वैसे ही इन चैत्यवासियों ने भी आगम पढ़ने का अधिकार अपने ही विधि रिक्त रखना । यदि वे आबकों को भी आगम पढ़ने की छुट दे देते तो जंग ग्रंथों को पढ़कर आ धन के स्वयं उपार्जन करना चाहते थे वह किस तरह बन सकता था । तथा जंग ग्रंथों के सम्पासी आबक तनका दुहाचार देखकर उन्हें किस तरह मान डले ।

इस प्रकार श्रावकों को आगम पढ़ने की छूट देने पर अपने ही पेट पर जात लगने के समान होने से, और अपनी सारी पोत खुल जाने के भय के कारण ऐसा कौन सरल पुरुष होगा जो अपने समस्त लाभ को अनायास ही चला जाने दे ।

पूर्वोक्त हरिभद्र सूरि जी के उल्लेख से यह बात भली भाँति मालूम हो जाती है कि श्रावकों को आगम न बाँचने देने का बीज चैत्य वासियों ने ही बोया है ।

चैत्य वासियों का उपरोक्त कथन अयुक्त है क्यों कि अग सूत्रों में श्रावकों को, लब्धार्थ, गृहीतार्थ, पृष्टार्थ, विनिश्चितार्थ जीवाजीव के जानने वाले और प्रवचन से अचलनीय वर्णित किया है । इस से वे सूक्ष्म विचारों को भी जानने के अधिकारी हैं । इतना कुछ ज्ञानाधिकार श्रावकों के विषय में शास्त्रों द्वारा सिद्ध होने पर भी हमारे धर्म गुरु हम सूत्र पढ़ने के अनाधिकारी बतलाते हैं ।

प्रिय पाठक महोदय जी ! जो ये उपरोक्त लेख श्रावकों के शास्त्राध्ययन की विरोधिता के विषय में

जिसे गये हैं यदि चैत्य वासी आचर्यों के जिये ऐसे
 सेवकों द्वारा ऐसी बाढ़ा बन्धी न करते तो उन की
 कैसे बन जाती ? उपरोक्त लेख में जो यह शब्द
 आया है कि अंग अंगों को पढ़ कर जो धन वे
 स्वयं उपार्जन करना इच्छते थे वह किन्तु तब बन
 सकता था । इस का साफ मतलब यही है कि
 चैत्यवासी जिस तरह ब्राह्मण लोग भामवतादि
 सुनाकर लोगों से कथा समाप्ति पर कथा का भोग
 पढ़कर द्रव्य बसूली करते हैं इसी प्रकार यह चैत्य
 वासी साधु लोग भी धन आदि शास्त्र सुनाकर
 कथा की समाप्ति पर गृहस्थों से धन प्राप्त करते
 थे । क्या परिग्रह परिस्थानी भगवान् महावीर
 स्वामी के ससे जैन साधुओं का यही आदर्श
 त्याग है ?

यह द्रव्य बसूली प्रथा कथादि सूत्र की वाचनी
 पर आज तक भी पाई जाती है । यदि
 आचर्यों के जिये शास्त्राध्ययन का ये लोग अधिकार
 दे बैठे तो आज इन लोगों के अनुयायी आचर्य लोग
 करिषत वैदिक गुरु की अंध भक्ति के आदेश में आकर,

कल्पित देवों और अपने गुरुओं के आगे अज्ञानी लोगों की तरह नाचना, गाना, भगडपाना ऐसी जगत हसारुँ रूप शास्त्र विरुद्ध चेष्टाएं न करते। यही कारण है कि नाचने कूदने में अनन्तानन्त व्रत फल बतलाकर भाली जनता को तप जप सयम से वंचित रक्खा गया है। यदि चैत्य वासियों व श्रीमान् दण्डियों के अनुयायी शास्त्राभ्यासी होते तो नृत्यादि इन बाह्यक्रियाडम्बरों में कभी भी धर्म ना मानते।

जैन सत्तक शब्द के सम्बन्ध के कारण हमारी इन चैत्य वासियों व मूर्त्तिपूजक दण्डियों के प्रति यही हार्दिक भावना है कि इन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो, जिस से ये लोग अपने पतिताचरण और शिथिलाचारी-पन को छोड़ कर अपने कल्याण के भागी बनें।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॥

